12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 191

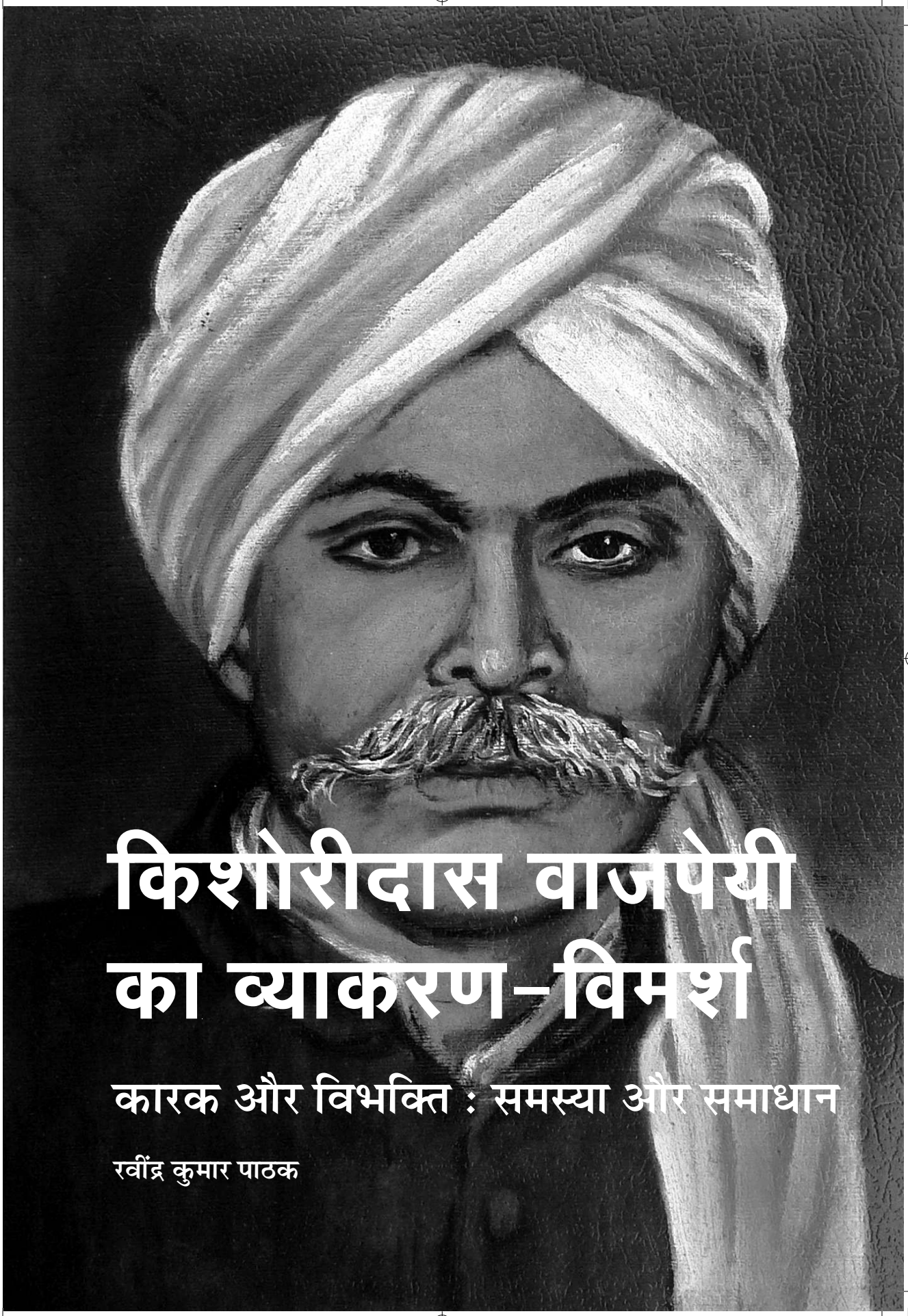

किशोरीदास वाजपेयी का व्याकरण-विमर्श

कारक और विभक्ति : समस्या और समाधान

रवींद्र कुमार पाठक

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 192

हिंदी-व्याकरण की धारा में, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी (1898-1981) की भूमिका एक ऐसे घाट की तरह थी जिसके सहारे उसके प्रवाह को एक नयी और काफ़ी हद तक सही दिशा मिली। व्यक्तित्व व कृतित्व के लिहाज़ से देशज और मौलिक प्रतिभा के धनी आचार्य वाजपेयी की 1943 में प्रकाशित कृति *ब्रजभाषा का व्याकरण* की भूमिका वस्तुत: 'हिंदी के व्याकरणों का व्याकरण'[1] साबित हुई। इसने उस समय (और काफ़ी कुछ आज भी) लोकप्रियता के शिखर पर विराजमान कामता प्रसाद गुरु के *हिंदी व्याकरण* (1921) के विवेचन में पर्याप्त दोष दिखा कर हिंदी-समाज को उसके सम्मोहन से मुक्त करना शुरू किया। उन्होंने व्याकरण-विवेचन के लिए गुरु द्वारा वरण की गयी अंग्रेज़ी-प्रभावित पद्धति के कारण हिंदी-व्याकरण की कई भ्रांत धारणाओं का निराकरण किया। इससे हिंदी-व्याकरण में युगांतर हो गया। गुरु हिंदी-व्याकरण के महान व्यवस्थापक थे, परंतु 'काल' व 'कारक' जैसी अर्थपरक कोटियों पर वे भारतीय व्याकरण-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चाह कर भी विचार नहीं कर पाए और अंग्रेज़ी ग्रैमर की परम्परा के आधार पर बनी रूढ़ि का पालन करते रहे। इसी कारण इस क्षेत्र में हिंदी-व्याकरण का ढाँचा कमज़ोर ही बना रहा। आचार्य वाजपेयी ने अपने तलस्पर्शी विवेचन से इसे यथासम्भव सुदृढ़ किया। हिंदी-व्याकरण पर उनकी स्वतंत्र पुस्तक *राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण* (1949) के प्रकाशित होते ही यह युगांतर सिद्ध हो गया, जिसका पूर्ण प्रतिफलन 1958 में प्रकाशित उनकी पुस्तक *हिंदी शब्दानुशासन* में हुआ। आचार्य वाजपेयी ने आंग्ल पद्धति अपनाने के कारण कई तरह से मूलाच्छिन्न, अस्वस्थ व हल्के हो चुके हिंदी-व्याकरण को भारतीय व्याकरण-दृष्टि व व्याकरण-प्रक्रिया के उपयोग द्वारा परिष्कार व गहराई प्रदान की। *हिंदी शब्दानुशासन* एक तरह से आचार्य वाजपेयी की हिंदी भाषा और व्याकरण से संबंधित साधना का सार और उनकी हिंदी-निष्ठा का मूर्त रूप है। ख़ास बात यह है कि इस ग्रंथ द्वारा उन्होंने गुरु के ज़माने तक व्याप्त हिंदी-व्याकरण की जिन असंगतियों का निवारण करके उन पर नया प्रकाश डाला, उनमें कारक-प्रकरण अहम है। यह एक तरह से व्याकरण की भी मूल भित्ति है।

हिंदी-व्याकरण रचने की शुरुआत अठारहवीं सदी में उन विदेशी विद्वानों के हाथों हुई थी, जो युरोपीय 'ग्रैमर' की अवधारणा में तो पगे हुए थे, लेकिन इस देश की सुदीर्घ-समृद्ध 'व्याकरण'-धारणा से परिचित नहीं थे। उपनिवेशवादी व्यापार, सत्ता और मज़हब के प्रचार और स्थापना के लिए यहाँ की सम्पर्क-भाषा जानना चाहते थे। इसी कामचलाऊ उद्देश्य से विदेशी बौद्धिक हिंदी-व्याकरण के प्रणयन में लगे। ऐसे विद्वानों की एक लम्बी परम्परा रही है। इनमें जोशुओ केटेलेर (डच भाषा में लिखित *अ ग्रामर एण्ड ए वॉकेबुलेरी ऑफ़ द लिंगा हिंदुस्तानिका,* लातीन-अनुवाद-रूप में 1743 में प्रकाशित), शुल्ज़ (1745), फरग्युसन (1773), गिलक्राइस्ट, लेवेडफ़ (1801), पादरी आदम (*हिंदी भाषा का व्याकरण,* 1827 ई.), विलियम येट्स, डंकन फ़ोर्ब्स, गार्सां द तासी, बैलेण्टाइन, बीम्स, एथरिंगटन (*भाषा-भास्कर,*1871), हार्नली, प्लाट्स, ग्रियर्सन, एडविन ग्रीव्ज़, केलॉग (*अ ग्रैमर ऑफ़ द हिंदी लैंग्वेज,* 1876) आदि कई वैयाकरण शामिल हैं।

दरअसल, 'व्याकरण' और 'ग्रैमर' में ऊपरी समानता के बावजूद बहुत हद तक तात्त्विक व्यतिरेक है। 'व्याकरण' जहाँ मूल रूप से पद-विचार है, वहीं 'ग्रैमर' में पदार्थ-विचार का भी बहुत ज़ोर रहा है। इसके अलावा, 'कारक', 'काल' आदि अर्थपरक वैयाकरणिक संकल्पनाओं की जगह 'ग्रैमर' में 'केस', 'टेंस' आदि रूपपरक संकल्पनाएँ हैं। हिंदी व्याकरण रचना पर क़रीब एक सदी तक विदेशी वैयाकरण और उनकी ग्रैमर संबंधी अवधारणाएँ छाई रहीं। भारतीय विद्वानों ने भी जब अपने प्रयास शुरू किये, तो भी वे ग्रैमर संबंधी अवधारणाओं की छाप से नहीं बच पाए।

---

[1] किशोरीदास वाजपेयी (1976). (इसके उल्लेखानुसार अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने ऐसा कहा था.)

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 193

गुरु का *हिंदी-व्याकरण* वास्तव में ऐसा पहला ग्रंथ सिद्ध हुआ, जिसने इस भाषा के सारे प्रयोगों तथा व्याकरण के सभी अंगों का समाहार करते हुए ऐसा व्यवस्थित ढाँचा तैयार किया, जो कमोबेश आज तक क़ायम है। ... अंग्रेज़ी ग्रैमर के विख्यात कर्त्ता जे.सी. नेसफ़ील्ड की पद्धति ... के चलते 'कारक', 'काल' आदि कई अंगों के विवेचन में गुरु को ख़ासी कठिनाई हुई थी। यद्यपि वे *अष्टाध्यायी* व *महाभाष्य* के महत्त्व व गाम्भीर्य से परिचित थे, फिर भी उन्होंने प्रचलनवश अंग्रेज़ी का ढर्रा पकड़ा। उन्हें लगा कि इसी से विवेचन करने पर

कामता प्रसाद गुरु जब हिंदी-व्याकरण के क्षेत्र में उतरे, तो वे भी व्याकरणिक विश्लेषण की उक्त परम्परा या प्रचलन के दबाव में थे। उन पर इस भारी ज़िम्मेदारी का दबाव भी था कि हिंदी भाषा के अस्थिर स्वरूप और डगमगाते व्याकरणिक विश्लेषणों के दौर में वे एक ऐसा सर्वांग-समाहारी, व्यवस्थित और सर्वमान्य व्याकरण निर्मित करें, जो किसी हद तक उस भाषा के मानकीकरण और व्याकरणिक स्थिरता के लक्ष्य की पूर्ति कर सके। *हिंदी-व्याकरण* नामक उनका लक्ष्यीभूत ग्रंथ 1920 में जा कर बना और 1921 में प्रकाशित हुआ, परंतु इससे पहले ही *भाषा-वाक्य-पृथक्करण, हिंदी बालबोध व्याकरण* और *सहज हिंदी व्याकरण* जैसी उनकी कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी थीं। गुरु का *हिंदी-व्याकरण* वास्तव में ऐसा पहला ग्रंथ सिद्ध हुआ, जिसने इस भाषा के सारे प्रयोगों तथा व्याकरण के सभी अंगों का समाहार करते हुए ऐसा व्यवस्थित ढाँचा तैयार किया, जो कमोबेश आज तक क़ायम है। इससे हिंदी भाषा के प्रयोग को ले कर अराजकता से भरे उस युग में एक बड़े अभाव की पूर्ति भी हुई। हालाँकि वह व्याकरण कई दोषों से ग्रस्त था, फिर भी तत्कालीन परिस्थिति में उससे बेहतर प्रयोजनीय ग्रंथ का निर्माण मुश्किल था। उसके अधिकांश दोषों का मूल कारण अंग्रेज़ी ग्रैमर के विख्यात कर्त्ता जे.सी. नेसफ़ील्ड की पद्धति का अनुकरण था, जिसके चलते 'कारक', 'काल' आदि कई अंगों के विवेचन में गुरु को ख़ासी कठिनाई हुई थी। यद्यपि वे *अष्टाध्यायी* व *महाभाष्य* के महत्त्व व गाम्भीर्य से परिचित थे, फिर भी उन्होंने प्रचलनवश अंग्रेज़ी का ढर्रा पकड़ा। उन्हें लगा कि इसी से विवेचन करने पर स्पष्टता व सरलता आ सकती है। सम्भवत: उन्होंने सोचा होगा कि अभी यदि संस्कृत-पद्धति के ज़रिये हिंदी-व्याकरण को व्यवस्थित किया गया तो कठिनाइयाँ ज़्यादा आएँगी, और अगर वैसा करना सम्भव हो भी गया, तो अंग्रेज़ी पद्धति के सहजाभ्यासी जनों को वह असहज लगेगा। गुरु द्वारा ऐसा सोचना हिंदी-व्याकरण के लिए बहुत महँगा पड़ा। तब तक का अंग्रेज़ी ग्रैमर जिस प्रकार की व्यवहारोपयोगी भाषा-व्यवस्था और आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, वही सीमा उनके व्याकरण की भी रही। सरल आंग्ल-पद्धति अपना लेने के कारण व्याकरण की विस्तृत प्रक्रिया व नवोद्भावनाओं का समावेश उनके ग्रंथ में नहीं हो सका तथा वे भाषा-विश्लेषण की गहराई में भी न उतर सके।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसी हस्ती की प्रेरणा व निर्देशन में लिखित और नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्था द्वारा (विद्वानों की एक समिति द्वारा 'सर्वमान्य' बना कर) प्रकाशित किये जाने के कारण गुरु का ग्रंथ प्रामाणिक तो हो गया, परंतु उसी के साथ उस की कई भ्रांत स्थापनाएँ भी बद्धमूल हो गयीं। दो-तीन दशकों तक उस व्याकरण की धूम रही। उसकी लोकप्रियता में तब जा कर कुछ उतार आना शुरू हुआ, जब किशोरीदास वाजपेयी अपनी मौलिक सूझों के साथ इस क्षेत्र में उतरे।

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 194

कारकत्व 'प्रातिपदिक' (क्रिया से इतर पद) का 'धातु' (क्रिया पद) से संबंध है, जिस पर वाक्य (भाषा-प्रयोग) की नींव होती है। कारक वह 'प्रातिपदिक' (क्रियेतर पद) है जो 'धातु' (क्रिया पद) से साक्षात् सम्बद्ध होता है। कारकत्व का संकेत/द्योतन जिन प्रत्ययों से होता है, वे 'प्रातिपदिक विभक्ति' कहलाते हैं, जिन्हें संक्षेप में 'विभक्ति' कहने का भी चलन हिंदी-जगत् में रहा है। अर्थात्, 'विभक्ति' शब्द से हिंदी-जगत् आम तौर पर 'प्रातिपदिक-विभक्ति' का तात्पर्य ग्रहण करता है।

'कारक' और 'विभक्ति' के संदर्भ में, हिंदी-व्याकरण के इतिहास में अनेक स्तरों का घालमेल हुआ है। जैसे, (1) 'विभक्ति' का तात्पर्य 'ने', 'को', 'से' आदि से लगाना। ये हिंदी में कारक-पद की रचना के लिए प्रयुक्त अव्यय-विशेष हैं, जिनकी स्थिति प्राय: प्रत्ययवत् मानी जाती है। फिर, (2) उक्त अर्थ में गृहीत 'विभक्ति' को 'कारक' से अभिन्न मान लेना। उसके बाद (3) हिंदी-व्याकरण में छह की बजाय आठ कारकों की स्थिति मान ली गयी । किसी वैयाकरण ने एक भूल की, तो किसी ने दूसरी, किसी ने तीसरी और किसी-किसी व्याकरण में तीनों तरह की भूलें हैं। हिंदी-व्याकरणेतिहास इन भूलों से इतना ग्रस्त रहा है कि आज तक 'कारक' व 'विभक्ति' का स्पष्ट स्वरूप उभर ही नहीं पाया।

'कारक' और उसकी 'विभक्ति' के संदर्भ में हिंदी-व्याकरण में शुरू से ही यह गड़बड़ी दिखाई पड़ जाती है । हिंदी में आठ कारक मानने और 'कारक' व 'विभक्ति' को एक समझने के भटकाव की शुरुआत पादरी आदम (1827) ने ही कर दी थी। उन के व्याकरण में केवल 'कारक' शब्द आया है, 'विभक्ति' शब्द आया ही नहीं, जिसे आंशिक तौर पर हिंदी-व्याकरण के प्रथम भारतीय कल्पक पण्डित श्रीलाल (*भाषा-चंद्रोदय,* 1855) ने भी स्वीकार कर लिया था। उन्होंने भले 'कारक-चिह्न' (= विभक्ति-प्रत्यय) को अलग माना था, परंतु आठ कारकों की धारणा के वशीभूत तो वे थे ही। फिर, एथरिंगटन (1871), सितारेहिंद (1875), केलॉग (1875), रामचरण सिंह (*भाषा-प्रभाकर,* 1875), पण्डित अम्बिकादत्त व्यास आदि प्राय: सभी देशी-विदेशी वैयाकरणों ने हिंदी भाषा में आठ ही कारक माने।[2]

कामता प्रसाद गुरु का कारक व विभक्ति विषयक विचार इसी सदोष विरासत का तर्कसम्मत विस्तार है । वे 'कारक' शब्द का प्रयोग संज्ञा (या सर्वनाम) के उस रूप के लिए करते हैं, जिससे उसका संबंध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है। अर्थात्, वे 'रामचंद्रजी ने खारे जल के समुद्र पर बंदरों से पुल बँधवा दिया है' जैसे वाक्य में 'रामचंद्र जी ने', 'समुद्र पर', 'जल के' आदि रूपांतरों (रूपों) को 'कारक' कहते हैं तथा इनमें लगे परसर्गों को 'विभक्ति' की संज्ञा देते हैं। उनका यह लक्षण 'कारक' और 'विभक्ति' (मतलब 'परसर्ग') की एकता पर टिका हुआ है। गुरु को यह भली भाँति पता है कि वे जिस अर्थ में 'कारक' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, वह अर्थ संस्कृत में प्रतिपादित कारक-लक्षण से भिन्न है, तथा उन्हें यह भी लगता है कि 'हिंदी में कारक और विभक्ति को एक मानने की चाल कदाचित् अँगरेजी व्याकरण का फल है'; फिर भी वे इस भ्रांत मार्ग पर चलने को इस कारण विवश हैं कि एक तो उनके अनुसार हिंदी में 'कारक' और 'विभक्ति' का अंतर मानने की परम्परा न के बराबर है और जिन वैयाकरणों[3] ने ऐसा अंतर मानने की चेष्टा की है, वे भी उनके मत की समाधानपूर्वक विवेचना करने में असमर्थ रहे हैं। उनके मत से, दूसरी बात यह है कि हिंदी में संज्ञाओं के वैभक्तिक रूपों ('समुद्र पर', 'जल के' आदि) की संख्या की अत्यल्पता के कारण एक ही रूप का एकाधिक कारकों में उपयोग होता है, जिसके कारण उसमें 'कारक' और 'विभक्ति

---

[2] केशवराम भट्ट ने अपनी रचना *हिंदी व्याकरण* (1903) ने 'कारक-चिह्नों' को 'परसर्ग' न कह कर 'विभक्ति' कहा है तथा पाँच कारक ही माने हैं. वे सम्प्रदान को 'अप्रधान कर्म' कहते हैं. पण्डित रामावतार शर्मा ने *हिंदी-व्याकरण-सार* (1910) में हिंदी में छह कारक और दो विभक्तियों (प्रथम के दो भेद करके तीन विभक्तियों) की सत्ता मानी है.

[3] कामता प्रसाद गुरु (संवत् 2057) : 186-87. उन्होंने केशवराम भट्ट और रामावतार शर्मा के हवाले से यह बात कही है.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 195

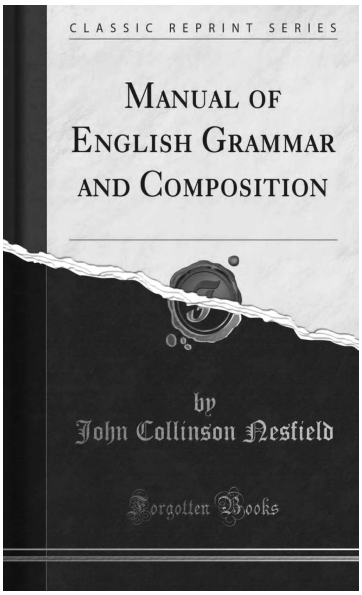

नेसफ़ील्ड ने 'केस' की परिभाषा दी है, 'द रिलेशन इन विच अ नाउन स्टैंड्स टू सम अदर वर्ड, ऑर चेंज ऑफ़ फ़ॉर्म बाइ विच दिस रिलेशन इज़ इंडीकेटिड, इज़ काल्ड द केस', यानी, (1) वाक्य में नाउन (संज्ञा, वैसे 'नाउन' में 'प्रोनाउन' को भी समाहित माना गया है) का अन्य शब्दों से संबंध अथवा (2) उस संबंध को दिखलाने वाले उनके रूपांतर को 'केस' कहते हैं। यह परिभाषा है। पर आगे के विवेचन से यह स्पष्ट उभर जाता है कि 'केस' से तात्पर्य वे मुख्यतः (2) को ही लेते हैं, और (1) विवेचन में प्रायः कहीं नहीं है (हाँ, ध्वनित मान सकते हैं)।

का सूक्ष्म अंतर मानने में बड़ी कठिनाई है।[4] 'कारक' और 'विभक्ति' के संबंध में चल रही भ्रांत विचार-धारा पर तब एक तरह से निर्णायक मुहर लग गयी जब गुरु जैसे धुरंधर वैयाकरण ने अपने तर्कों से उसे प्रतिष्ठित कर दिया, जिसके चलते दीर्घ-परम्पराप्रतिष्ठ 'कारक' व 'विभक्ति' जैसे शब्दों का अर्थ तोड़-मरोड़ का शिकार बन गया।

इस संदर्भ में किशोरीदास वाजपेयी का नवीन-स्फूर्ति से परिपूरित 'विभक्ति-विचार' और 'कारक-विचार' हिंदी-व्याकरण के अध्येताओं और सिद्धांतकारों के लिए पाथेय बन सकता है। इस क्षेत्र में उन्होंने अद्‌भुत मौलिकता का परिचय दिया है, जिससे आंग्ल प्रभाव से बनीं कई भ्रामक धारणाओं व रूढ़ियों का न केवल निराकरण हुआ, बल्कि हिंदी-व्याकरण में विचार की एक नयी सरणी का उद्‌घाटन भी हुआ। कुछ त्रुटियों के बावजूद उनका कारक व विभक्ति संबंधी विवेचन युगांतकारी है।

---

[4] वही : 185-87.

'हिंदी में संज्ञाओं की विभक्तियों (रूपों) की संख्या संस्कृत की अपेक्षा बहुत कम है और विकल्प से बहुधा कई एक संज्ञाओं की विभक्तियों का लोप हो जाता है. संज्ञाओं की अपेक्षा सर्वनामों के रूप हिंदी में कुछ अधिक निश्चित हैं, पर उनमें भी कई शब्दों की प्रथमा, द्वितीया और तृतीया विभक्तियाँ बहुधा दो दो कारकों में आती हैं. हिंदी संज्ञाओं की एक विभक्ति कभी चार कारकों में आती है; जैसे— मेरा हाथ दुखता है, उसने मेरा हाथ पकड़ा, नौकर के हाथ चिट्ठी भेजी गयी, चिड़िया हाथ न आयी. इन उदाहरणों में 'हाथ' संज्ञा (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) एक ही (प्रथमा विभक्ति) में है और वह क्रमशः कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण कारकों में आयी है ... ऐसी अवस्था में प्रायः एक ही रूप और अर्थ के शब्दों को कभी प्रथमा, तो कभी तृतीया और कभी सप्तमी विभक्ति में मानना पड़ेगा. केवल रूप के अनुसार विभक्ति मानने से हिंदी में 'प्रथमा', 'द्वितीया' आदि कल्पित नामों में भी गड़बड़ी होगी. संस्कृत में शब्दों के रूप बहुधा निश्चित और स्थिर हैं, इसलिए जिन कारणों से उसमें कारक और विभक्ति का भेद मानना उचित है, इन्हीं कारणों से हिंदी में यह भेद मानना कठिन जान पड़ता है. हिंदी में अधिकांश विभक्तियों का रूप केवल अर्थ से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि रूपों की संख्या बहुत कम है, इसलिए इस भाषा में विभक्तियों के सार्थक नाम कर्त्ता, कर्म आदि ही उपयोगी जान पड़ते हैं.'

'इससे हिंदी व्याकरण की क्लिष्टता बढ़ती है और जब तक उनकी समाधानकारक व्यवस्था न हो, तब तक केवल वाद-विवाद के लिए उन्हें व्याकरण में रखने से कोई लाभ नहीं है. इसलिए हमने कारक और विभक्ति शब्दों का प्रयोग हिंदी-व्याकरण के अनुकूल अर्थ में किया है; और प्रथमा, द्वितीया आदि कल्पित नामों के बदले कर्ता, कर्म आदि सार्थक नाम लिखे हैं.'

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 196

प्रातिपदिक-विभक्ति का विचार

शब्द को 'पद' के रूप में ढालने वाले (यानी, वाक्य-प्रयोग के लायक़ बनाने वाले) प्रत्यय-विशेष को 'विभक्ति' कहते हैं। यह 'प्रातिपदिक' (क्रियेतर शब्द, जैसे लड़का, मैं आदि) और 'धातु' (क्रियापद का मूल, जैसे खा, जा आदि) दोनों को पद बनाने का कार्य करती है, इसलिए यह दो तरह की मानी जाती है— 'प्रातिपदिक विभक्ति' और 'धातु/क्रिया-विभक्ति'। उदाहरणार्थ, 'लड़का' में 'ए' लग कर उसे 'लड़के' पद के रूप में ढालता है, तो 'ए' प्रातिपदिक-विभक्ति है। इसी तरह, 'जा' में 'एँ' लग कर उसे 'जाएँ' पद के रूप में परिणत करता है, तो 'एँ' धातु/क्रिया-विभक्ति है। (ये पद वाक्य में प्रयुक्ति की योग्यता रखते हैं, जैसे 'लड़के जाएँ।')

यद्यपि वाजपेयी 'विभक्ति' शब्द को प्राय: 'प्रातिपदिक विभक्ति' अथवा 'कारक विभक्ति' अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं, पर उन्हें पता है कि 'क्रिया-विभक्ति' भी होती है। तभी तो वे *हिंदी शब्दानुशासन* में एक जगह 'विभक्ति' के दो प्रकारों 'संज्ञा विभक्ति' ('कारक विभक्ति' व 'उपपद विभक्ति') तथा 'क्रिया-विभक्ति' का उल्लेख करते हैं। यहाँ यह भी संशोधनीय है कि 'प्रातिपदिक' में चूँकि 'संज्ञा' के अलावा 'सर्वनाम' और 'विशेषण' भी आते हैं, अत: 'प्रातिपदिक-विभक्ति' को 'संज्ञा-विभक्ति' नहीं कह सकते।

वाजपेयी जी हिंदी में 'पद' की निष्पत्ति के लिए 'विभक्ति' का योग अनिवार्य नहीं मानते और कहते हैं कि विभक्ति-सहित होने पर ही कोई शब्द 'पद' बन सकता है। यह संस्कृत-लक्षण है। हिंदी में तो अर्थ-संकेतित शब्द ही पद है, यदि वह वाक्य का अंश हो, चाहे उस में कोई विभक्ति हो या न हो। बात यह है कि वाजपेयी 'ने', 'से' आदि परसर्गों को 'विभक्ति' मान के चले, इसी कारण जहाँ इनका प्रयोग नहीं दिखाई देता, वहाँ वे इन के अप्रयोग की बात मानते हैं। यदि इन्हें ही कुछ समय के लिए हम 'विभक्ति' मान कर चलें तो भी 'अप्रयोग' न मान कर 'प्रयोग-पश्चात् लोप' की बात मानें तो वाक्य में संगति की व्याख्या हो जाएगी। अन्यथा सवाल उठता है कि वाक्यगत शब्दों का परस्पर अन्वय कैसे हुआ है ? दूसरी बात, हिंदी में 'शुद्ध विभक्ति' का तत्त्व वाजपेयी खोज न सके। वे परसर्गों को 'विभक्ति' कहने पर अड़े रहे।

हिंदी-व्याकरण की बहुत सारी पुस्तकों में 'परसर्गों' को 'विभक्ति' (मतलब, प्रातिपदिक-विभक्ति) कहा गया है। पर, भारतीय व्याकरण-दर्शन के सच्चे अधिकारी होने के बावजूद वाजपेयी भी इसी भ्रम के शिकार रहे— यह ज़रूर अचरज की बात है। वे भूल गये कि 'शुद्ध विभक्ति' तत्त्वत: अलग चीज़ है, जबकि हिंदी के रूसी वैयाकरण दीमशित्स ने हिंदी के शुद्ध विभक्ति-तत्त्व का संकेत किया है।[5] हिंदी की प्रातिपदिक-रूपावली मुख्यत: 'परसर्ग'-युक्त शुद्ध विभक्ति (विभक्ति+परसर्ग) से बनाई जाती है। पर, हिंदी-व्याकरणों में इन सब की चर्चा नहीं की जाती। एक उदाहरण से बात स्पष्ट की जा रही है। हिंदी का एक पद है 'लड़के ने'। यह 'लड़का+ए+ने' से बना है। इसमें 'लड़का' प्रातिपदिक

---

[5] जाल्मन दीमशित्स (1983) : 61-62, 399.

पुराने हिंदी-वैयाकरण 'ने', 'को', 'से' आदि परसर्गों को ही 'विभक्ति' कहते रहे. पर, बहुत पहले ही पण्डित रामावतार शर्मा ने ('हिंदी-व्याकरण-सार', 1910) हिंदी में 'विभक्ति' तत्त्व को खोज निकाला था और 'ने', 'को', 'से' आदि को उस से अलग मानकर 'कारकार्थक' अव्ययों में गिना था. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ('हिंदी व्याकरण पर व्याख्यान' नामक लेख, *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली,* खण्ड 7) ने इस परम्परा का विकास किया और 'विभक्ति' और 'परसर्ग' (तब तक 'ने', 'को', 'से' आदि को 'परसर्ग' कहा जाने लगा था) को अलग-अलग माना. दीमशित्स (*हिंदी-व्याकरण,* 1983), अनंत चौधरी (*हिंदी व्याकरण का इतिहास,* 1972), सुधा कालरा (*हिंदी वाक्य-विन्यास,* 1971), बदरीनाथ कपूर (*परिष्कृत हिंदी-व्याकरण,* 1978)— सबने इस अलगाव को माना है. भारतीय व्याकरण-दर्शन के 'कारक'-तत्त्व को समझने में विफल होने के बावजूद दीमशित्स की यह उपलब्धि है कि हिंदी भाषा में 'परसर्ग' से 'विभक्ति' को अलग तत्त्व मानते हुए वे शुद्ध 'विभक्ति-तत्त्व' को पकड़ लेने के क़रीब जा पहुँचे हैं. *हिंदी व्याकरण की रूपरेखा* (1966), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली में 'विभक्तियों' को 'कारक-प्रत्यय' एवं परसर्गों को 'विभक्ति-चिह्न' कह कर उन्होंने जो भूल की थी, उसे *हिंदी व्याकरण* (1983) में आकर सुधार लिया. परंतु, यहाँ आकर 'ने' 'को' आदि मूल परसर्गों के साथ सारे 'संबंधसूचक अव्ययों' को

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 197

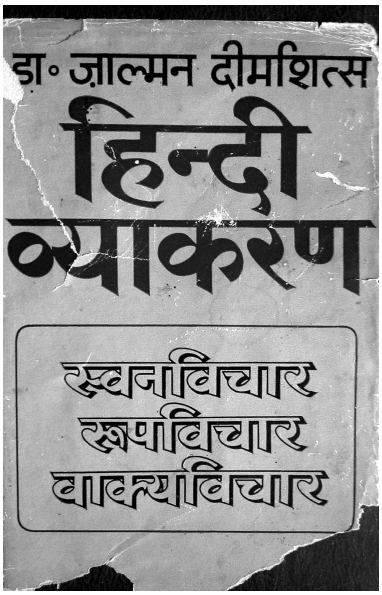

दीमशित्स की यह उपलब्धि है कि ... वे शुद्ध 'विभक्ति-तत्त्व' को पकड़ लेने के क़रीब जा पहुँचे ... 'विभक्ति' व 'परसर्ग' का भेद उन्हें स्पष्ट हो गया है— 'विभक्ति शब्द-बंध के प्रत्येक घटक में जुड़ी होती है, जबकि परसर्ग केवल एक बार अंतिम नियंत्रित शब्द के बाद आता है।' ... 'मेरे बड़े बेटे का घर ...' में 'का' को वे 'परसर्ग' कहते हैं और 'का' के कारण हुए 'मेरे बड़े बेटे' के ध्वनि-परिवर्तन 'ए' ('आ' का 'ए') को 'विभक्ति'। वे इसे 'प्रत्यय ' का पर्याय नहीं मानते। उन के मत से तीन प्रकार के प्रत्ययों (-पूर्व, पर, अंत्य) में से विभक्ति 'अंत्य' प्रत्यय है। 'विभक्ति' उनके मत से शब्द-रूपांतरकारी प्रत्यय है; शेष दो प्रत्यय शब्दनिर्माणात्मक। 'परसर्ग' को वे 'विकारी कारक-रूपों' (जैसे- छोटे लड़के, कुएँ) के अर्थ को मूर्त्त, ठोस करने वाले मानते हैं। उनके मत से, इन रूपों का नियमत: स्वतंत्र अर्थात् परसर्ग के बिना प्रयोग नहीं होता। दीमशित्स का यह विवेचन स्वागतयोग्य है।

है, 'ए' विभक्ति और 'ने' परसर्ग।

'ने','को' आदि को 'परसर्ग' कहने वालों को वाजपेयी ने कोसा है तथा 'विभक्ति' शब्द की वकालत की है। 'परसर्ग'-वादियों के तर्क काफ़ी लचर रहे होंगे, तभी तो वाजपेयी का उत्तर है, 'कहते हैं— ये 'को' 'ने' आदि विभक्तियाँ नहीं परसर्ग हैं, क्योंकि किन्हीं शब्दों के ये घिसे हुए रूप हैं— मूलत: विभक्ति नहीं। परंतु संस्कृत की विभक्तियाँ स्वत: उत्पन्न हैं और हिंदी की विभक्तियाँ 'ने' आदि किन्हीं शब्दों के रूपांतर हैं। पर इससे नाम-भेद कैसे? काम एक, नाम एक। कहते हैं— 'को' आदि का प्रयोग प्रकृति से सटाकर नहीं होता; इसलिए परसर्ग हैं। क्या यह नहीं कह सकते कि हिंदी में विभक्तियों के प्रयोग प्रकृति से सटा कर नहीं, हटाकर होते हैं। साहब कहीं चम्मच से खाता है, तो उसके खाने का नाम ही बदल दिया जाएगा क्या?'[6] हो सकता है कि 'परसर्ग'-वादी अपने तर्क सही तरीक़े से न रख पाए हों, जिससे वाजपेयी ने उनकी धज्जियाँ उड़ा दीं। पर, इससे 'विभक्ति' 'परसर्ग' नहीं सिद्ध हो जाती। हो सकता है कि वाजपेयी ने 'ने' को संस्कृत के 'बालकेन' (तृतीया एकवचन) के '-एन' विभक्ति से विकसित मानने के अपने विचार का ही विस्तार किया है, इन परसर्गों को 'विभक्ति' ही मान कर। 'ने' आदि यदि '-एन' आदि संस्कृत विभक्तियों से विकसे हों, तो भी हिंदी में विभक्तितर बनके ही प्रयुक्त तत्त्व हैं। आधुनिक चिंतकों के मत से कारकीय अवस्था को सूचित

'परसर्ग' कहने की ग़लती भी कर बैठे. पर, यहाँ 'विभक्ति' व 'परसर्ग' का भेद उन्हें स्पष्ट हो गया है— 'विभक्ति शब्द-बंध के प्रत्येक घटक में जुड़ी होती है, जबकि परसर्ग केवल एक बार अंतिम नियंत्रित शब्द के बाद आता है'. वही : 399 उदाहरणस्वरूप, 'मेरे बड़े बेटे का घर ...' में 'का' को वे 'परसर्ग' कहते हैं और 'का' के कारण हुए 'मेरे बड़े बेटे' के ध्वनि-परिवर्तन 'ए' ('आ' का 'ए') को 'विभक्ति'. वे इसे 'प्रत्यय ' का पर्याय नहीं मानते. उन के मत से तीन प्रकार के प्रत्ययों (-पूर्व, पर, अंत्य) में से विभक्ति 'अंत्य' प्रत्यय है. 'विभक्ति' उनके मत से शब्द-रूपांतरकारी प्रत्यय है; शेष दो प्रत्यय शब्दनिर्माणात्मक : 61-62. 'परसर्ग' को वे 'विकारी कारक-रूपों' (जैसे- छोटे लड़के, कुएँ) के अर्थ को मूर्त्त, ठोस करने वाले मानते हैं. उनके मत से, इन रूपों का नियमत: स्वतंत्र अर्थात् परसर्ग के बिना प्रयोग नहीं होता. दीमशित्स का यह विवेचन स्वागत-योग्य है.

[6] *हिंदी शब्दानुशासन* : 172.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 198

करने वाला तथा शब्द के साथ संश्लिष्टावस्था में रहने वाला प्रत्यय 'विभक्ति' है— 'परसर्ग' का प्रयोग तो ज़रूरी होने पर शब्द के वैभक्तिक रूप के पश्चात् होता है। उपर्युक्त उदाहरण को लेकर ही हम यह बात स्पष्ट करते हैं। 'लड़का' शब्द में 'ए' विभक्ति लगने पर बने रूप 'लड़के' में अर्थ-संबंधी कुछ अधूरापन या अस्पष्टता रह जाती है (जैसे— 'लड़के ... कहा' वाक्य में कुछ अधूरापन लगता है), जिस के चलते उसके आगे परसर्ग 'ने' को लगाना पड़ता है। ('ने' को लाने से उक्त वाक्य सुस्पष्ट हो जाता है— 'लड़के ने कहा।')।

राष्ट्रभाषा का शुद्धरूप पुस्तक में निगमानंद परमहंस का तर्क है कि 'सर्ग' का अर्थ सृष्टि है (उपसर्ग = नये अर्थों की सृष्टि करता है समीप (उप) रह कर है)। इसलिए, 'परसर्ग' शब्द ठीक नहीं, क्योंकि नये अर्थ की सृष्टि नहीं होती, बल्कि नाम शब्दों का उन्हीं अर्थों में विभाग होता है, इसी से 'विभक्ति' शब्द ही ठीक है। परमहंस का तर्क भी अग्राह्य है, क्योंकि 'व्याकरण' में आ कर सार्थक शब्द भी अर्थ-निरपेक्ष हो जाता है। 'परसर्ग' शब्द प्रचलित हो गया है, इसलिए इसे अर्थ-निरपेक्ष पारिभाषिक शब्द मात्र मान लेना ठीक है। 'परसर्ग' 'विभक्ति' से भिन्न प्रकार की व्याकरणिक व्यवस्था है; इसलिए नामकरण अलग होना ही चाहिए। व्यापार-भेद, अर्थ-भेद, रूप-भेद तीनों कारणों से इसे अलग नाम देना ही पड़ेगा, भले 'परसर्ग' न कहें, पर 'विभक्ति' तो क़तई नहीं कह सकते।

'विभक्ति' नाम का अन्वयार्थ खोजते हुए वाजपेयी अनुमान लगाते हैं कि (1) विभक्त/विश्लिष्ट प्रयोग के चलते इनका 'विभक्ति' नाम है। जैसे— 'कृष्ण को' में 'को' विश्लिष्ट है। पर, उन्हें शंका होती है कि 'उसे' में विश्लिष्ट प्रयोग कहाँ है? इसके साथ, संस्कृत में भी तो विश्लिष्ट प्रयोग नहीं होता। तब, वे फिर अनुमान लगाते हैं; (2) 'सोचने से ऐसा लगता है कि संज्ञा-शब्दों को तथा क्रिया शब्दों को ये प्रत्यय कर्तृत्व-कर्मत्व आदि तथा विधि-आज्ञा आदि विशेष अर्थों में विभक्त करते हैं, इसीलिए शायद इन्हें 'विभक्ति' कहा गया हो। इनके बिना यह विशेष अर्थों में विनियोग-विभाजन सम्भव नहीं है।'[7] इस पर कहना चाहिए कि उनका लक्ष्य जब (2) ही था, तब (1) का ऊहापोह करना व्यर्थ ही था। 'विभक्ति' को 'चरम प्रत्यय' मानने की परम्परा का समर्थन करते हुए वाजपेयी हिंदी में इसकी नयी व्याख्या करते हैं— 'एक विभक्ति के बाद दूसरी विभक्ति ही लग सकती है, कोई अन्य (साधारण) प्रत्यय नहीं। सो, इन चरम-प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं। ...'[8]

शब्द के साथ विभक्ति के संश्लिष्ट अथवा विश्लिष्ट प्रयोग के अनुसार वे हिंदी में दो प्रकार की विभक्तियाँ मानते हैं :

(1) **विश्लिष्ट विभक्तियाँ :** ने, को, से, में, पर, के। वाजपेयी विभक्तियों में (मतलब 'परसर्गों' में) 'के लिए' की चर्चा नहीं करते। यह अच्छी बात है, पर हिंदी-व्याकरण के इतिहासकार डॉ. अनंत चौधरी को यह खटकती है।[9] पर, डॉ. चौधरी को यह समझना चाहिए था कि आपत्ति की कोई बात नहीं है, क्योंकि 'के लिए' परसर्ग है ही नहीं। बात यह है कि 'के लिए' में केवल 'के' परसर्ग है, 'लिए' तो संबंधसूचक है। चूँकि 'लिए' का प्रयोग बिना 'के' परसर्ग के नहीं होता, वही रूप है 'के लिए', जो 'के हेतु, 'के निमित्त', 'के सामने' आदि की तरह है।

(2) **संश्लिष्ट विभक्तियाँ :** -इ, -रे, -ने। -इ ('उसे', 'इसे', 'मुझे', 'तुझे' आदि में), '-रे'('तेरे', 'मेरे', 'तुम्हारे', 'हमारे' में) '-ने' ('अपने' में)।

फिर, इन सब विभक्तियों को वाजपेयी दो वर्गों में बाँटते हैं— कारक विभक्ति और उपपद

---

[7] वही : 34.

[8] वही : 124.

[9] अनंत चौधरी (1972) : 629.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 199

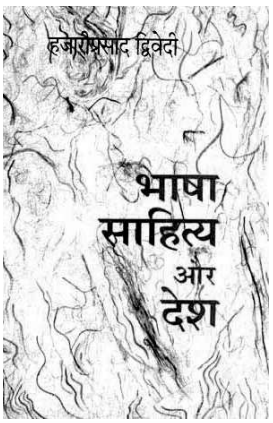

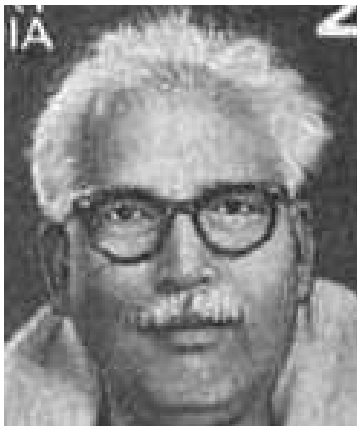

> 'कारक वे पद हैं जिनका क्रिया के साथ योग होता है। ऐसे पद केवल छह प्रकार के हैं— कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। ... संसार की किसी भाषा में छह कारक अवश्य रहेंगे, रूप उनके चाहे भिन्न हों। ... यह क्रिया के साथ वाक्य के भीतर के नामों (सत्त्वप्रधानानि नामानि— सब्सटेंटिव) का संबंध निश्चित करते हैं।' फिर, आचार्य द्विवेदी उनमें भी 'कृ' धातु से बने कारकों को ही वास्तविक कारक मानते हैं।

विभक्ति। 'कारक' को प्रकट करने की स्थिति में विभक्तियाँ उनके मत से 'कारक-विभक्तियाँ' कहलाती हैं तथा उससे भिन्न स्थलों पर उन्हें 'उपपद विभक्ति' कहते हैं।[10] पर, वाजपेयी 'कारक-विभक्ति' व 'उपपद विभक्ति' की अपेक्षित व्याख्या न कर पाए। संस्कृत-व्याकरण के अनुसार, कोई विभक्ति 'कारक' को प्रकट करने के लिए आये, तो उसे 'कारक विभक्ति' कहेंगे और यदि उपपद (अपेक्षित भाव-प्रकाशन हेतु लाए गये पद) मात्र के योग में वह प्रयुक्त हो, तो उस स्थिति में उसे 'उपपद विभक्ति' कहेंगे। जैसे— 'लड़के ने कहा' में 'लड़के ने' का 'ए+ने' कर्ता कारक के प्रकाशन हेतु आयी विभक्ति (यहाँ शुद्ध विभक्ति 'ए'+ परसर्ग 'ने') है, अत: यह 'कारक विभक्ति' कहलाएगी। पर, 'तुम मेरे ख़िलाफ़ खड़ी हो' में 'मेरे' का '-रे' किसी कारक के लिए नहीं, बल्कि 'ख़िलाफ़' शब्द के योग-मात्र में आयी विभक्ति (कहना चाहिए 'परसर्ग') है, अत: यह 'उपपद विभक्ति' कहलाएगी। 'उपपद विभक्ति' कहने का कारण यह है 'पद'-विशेष के सामीप्य (उप) के कारण विभक्ति-विशेष का प्रयोग विहित होता है वहाँ; न कि कारकत्व-विशेष के कारण विभक्ति आती है।

विभक्ति-विचार के क्रम में वाजपेयी ने कई नवीन उद्‌भावनाएँ प्रस्तुत कीं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :

1. हिंदी में संबंध-विभक्तियों के, -रे, -ने की प्रस्तुति। (ये उनके मत से 'कारक-विभक्ति' नहीं, बल्कि 'संबंध-विभक्ति' हैं।)
2. क, -र, -न हिंदी के संबंधार्थ तद्धित प्रत्यय हैं, जिनके विकार का/के/की आदि हैं।
3. संश्लिष्ट विभक्ति 'इ' की चर्चा।
4. 'संबंध-प्रत्यय' व 'संबंध-विभक्ति' के प्रयोग का क्षेत्र निर्धारित करना।
5. 'ने' सिर्फ़ कर्ता के अर्थ में प्रयुक्त होता है।
6. हिंदी में 'कारक-विभक्ति' व 'उपपद विभक्ति' का पहली बार संकेत करना।

'विभक्ति' (मतलब परसर्ग) का एक अनिवार्य लक्षण वाजपेयी लिंग व वचन के अनुसार अपरिवर्तनशीलता मानते हैं। इसी आधार पर वे 'का, के, की', '-रा',-रे,-री', '-ना,-ने,-नी' को 'विभक्ति'

---

[10] *हिंदी शब्दानुशासन* : 135.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 200

(मतलब परसर्ग) नहीं मानते, बल्कि हिंदी में 'संबंध-प्रत्यय' की कल्पना करते हैं तथा इनके मूल रूप 'क', 'र', 'न' को बतलाते हैं, जिनके पुलिंग एकवचन, पुलिंग बहुवचन व स्त्रीलिंग रूप क्रमशः का-के-की आदि हुए हैं। 'के', 'रे' व 'ने' का प्रयोग जहाँ लिंग व वचन से अप्रभावित दिखाई दिया, उस पर सूक्ष्मता से विचार करते हुए, वाजपेयी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये प्रयोग प्रत्यय के न हो कर 'विभक्ति' (मतलब परसर्ग) के हैं। अर्थात्, उनके मत से ऐसे प्रयोगों में आये 'के', 'रे' व 'ने' अलग चीज़ हैं, न कि 'का'-'के'-'की', 'रा'-'रे'-'री', 'ना'-'ने'-'नी' इस प्रत्यय-समूह में आये 'के', 'रे' व 'ने' हैं वे। 'का', 'के', 'की', को तो रामावतार शर्मा (*हिंदी-व्याकरणसार,* 1910) भी संबंधार्थ तद्धित प्रत्यय बता चुके थे।[11] परंतु, वाजपेयी की यह खोज है कि मूल प्रत्यय 'क', 'र', 'न' हैं, जिनके लिंग व वचन के कारण रूप क्रमशः का-के-की आदि हुए हैं। लेकिन, उनकी यह खोज अपूर्ण है। वस्तुतः 'न' या 'ना/ने/नी' को प्रत्यय मानने की ज़रूरत नहीं है। संस्कृत 'आत्मनः' से विकसित षष्ठ्यर्थ 'अपना' का अंत्याक्षर-मात्र है 'ना'। इसी के रूपांतर हैं— अपनी, अपने। सिर्फ़ एक शब्द के लिए प्रत्यय-कल्पना उचित नहीं है; वह भी तब जब शब्द-विकास-मात्र साफ़-साफ़ नज़र आ रहा हो। इसी शब्द से विकसित है स्ववाचक अव्यय 'अपने', जिसका अंत्याक्षर-मात्र है 'ने'। इसलिए, 'अपने' के '-ने' को परसर्ग नहीं मान सकते। '-रा' संस्कृत के शब्द 'अस्माकम्' आदि के 'आकम्' विभक्ति का विकास कहा जा सकता है। तो भी यह प्रत्यय माना जा सकता है, क्योंकि यह मध्यम व उत्तम पुरुषान्वयी सर्वनाम के दोनों वचनों (तेरा, मेरा, तुम्हारा, हमारा) में लगता है। इसी का रूप -'री/-रे' होता है। इस संदर्भ में, '-रे' को परसर्ग मानना तर्कसंगत ठहरता है।

'संबंध-विभक्ति' की स्थापना

वाजपेयी प्रकार्य के आधार पर 'के, '-रे', '-ने' को 'संबंध-विभक्ति' (कहना चाहिए था 'संबंध-परसर्ग') कहते हैं। यानी, ये 'कारक-विभक्ति' नहीं हैं, क्योंकि ये 'कारक' के अर्थ में नहीं आते। ('संबंध' उन के मत से 'कारक' नहीं है।)उनके द्वारा हिंदी में 'संबंध-विभक्ति' (कहना चाहिए था 'संबंध-परसर्ग') 'के', '-रे', '-ने' को खोज निकालना और विस्तृत, सुसंगत व्याख्या में ढालना डॉ. अनंत चौधरी के मत से 'हिंदी व्याकरण के लिए एक अभिनव तथ्योपलब्धि है।'[12] वाजपेयी से पहले अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने 'विभक्ति प्रत्ययों के अर्थ' प्रकरण में के/-रे प्रत्ययांत पदों का जो एक विशेष प्रयोग बतलाया है, उसमें इस खोज का बीज नज़र आता है।[13] 'का', '-रा', '-ना' का

---

[11] महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा (1954) : 81-87.

हिंदी में कारक और विभक्ति की अभिन्नता की भ्रामक परम्परा के बीच बीसवीं सदी के पहले दशक में वैयाकरण रामावतार शर्मा का उदय हुआ, जिन्होंने कारक और विभक्ति के पार्थक्य का न केवल पुष्ट आख्यान किया, बल्कि हिंदी भाषा में पहली बार शुद्ध विभक्ति-तत्त्व का अन्वेषण किया— 'ने', 'को', 'के' से अलग तत्त्व का. उन्होंने अपने *हिंदी व्याकरण-सार* में उन विचार-शून्य लेखकों की भर्त्सना की जो संस्कृत की देखादेखी हिंदी में भी सात विभक्तियाँ बताते थे. हिंदी समेत आधुनिक भाषाओं में वे नाम-शब्दों समेत दो विभक्तियाँ बताते हुए कहते हैं, 'नाम से और धातु से कुछ प्रत्यय ऐसे आते हैं जिन्हें विभक्ति कहते हैं. नाम से दो विभक्तियाँ आती हैं— प्रथमा और द्वितीया. प्रथमा दो प्रकार की हैं— साधारण और सम्बोधनार्थक. प्रथमा और द्वितीया, दोनों में दो वचन होते हैं— एकवचन और बहुवचन.' उनके मत से 'विभक्ति उन चिह्नों को कहते हैं जिनसे वचनों का बोध हो और जो दो शब्दों का परस्पर संबंध बतलावें.' उनके मत से *प्रभुओ, राजाओ, बलियों,* 'घोड़े' आदि में आगत 'ओ', 'ओं', 'यों', 'ए' आदि विभक्ति चिह्न हैं जिनके योग से नाम-शब्दों की रूप-रचना होती है. एक शब्द से दूसरे का संबंध-बोध कराने के लिए उनके मत से तीन साधन हैं : 1- विभक्तियाँ. 2- कारकार्थक अव्यय : ने, के, लिए, से, को, आदि के साथ वे 'आगे', 'प्रति', 'बिन', जैसे तमाम संबंधसूचक अव्ययों को उन्होंने कारकार्थक अव्यय कहा जो दो शब्दों का संबंध बताते हैं. ये कारकों की पहचान के लिए लगाए गये विशेष शब्द हैं. 3- तद्धित प्रत्यय : का, के, की. परंतु निर्भांत प्रतिपादन के इस बीजारोपण को आगे के अधितकर वैयाकरण पोषित-पल्लवित नहीं कर सके, बल्कि वे शर्माजी के प्रयत्न से अनजान ही बने रहे.

[12] *हिंदी व्याकरण का इतिहास* : 628.

[13] अम्बिका प्रसाद वाजपेयी (1919).

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 201

'विभक्ति'-पद से निर्वासन तथा 'के', '-रे', '-ने' की उस पर स्थापना वाजपेयी की 'कारक-विभक्ति' चर्चा की एक बड़ी देन है। पर, इस देन को हमें इस सुधार के साथ ग्रहण करना चाहिए कि '-ना/-ने/-नी' प्रत्यय नहीं हैं और '-ने' भी विभक्ति नहीं है।

वाजपेयी 'के', '-रे', '-ने' संबंध-विभक्तियों की स्थापना करने के पहले, उनकी सत्ता तथा 'क', 'र', 'न' प्रत्ययों से उनका पार्थक्य हिंदी की तमाम बोलियों में ढूँढ़ निकालते हैं तथा यहाँ तक दावा करते हैं कि जहाँ यह बात नहीं, उसे हिंदी की बोली मानना ही नहीं चाहिए।[14] इनके प्रयोग-क्षेत्र का निर्धारण वाजपेयी बख़ूबी करते हैं— 'जहाँ भेद्य-भेदक भाव हो, प्रत्यय लगता है और जहाँ वैसा न हो, वहाँ विभक्ति लगती हैं।'[15] वे और भी स्पष्टता से विस्तारपूर्वक इस विषय पर निम्नलिखित रूप में प्रकाश डालते हैं :

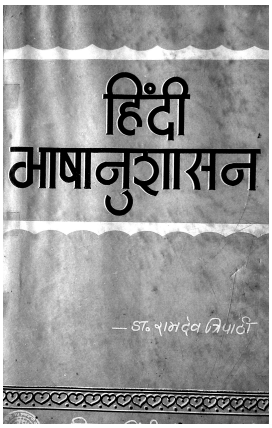

रामदेव त्रिपाठी ने इस पर उचित ही कहा है— 'राम की बग़ल में ही गोविंद का घर है' के साथ 'राम के दाहिनी बग़ल में गोविंद बैठा है' का प्रयोग और इसकी यह व्याख्या कि 'बग़ल' शब्द है तो स्त्रीलिंग ही किंतु 'राम के' के स्थान पर 'राम की' इसलिए नहीं होता कि 'के' संबंध-प्रत्यय नहीं, संबंध-विभक्ति है, बुद्धिग्राह्य नहीं। राम के दाहिने बग़ल में, अथवा राम की दाहिनी बग़ल में— दोनों प्रयोगों का समर्थन किया जा सकता है, 'ओर' तथा 'बग़ल' दोनों ही उभयलिंग माने जा सकते हैं, परंतु एक ही प्रयोग में एक विशेषण पुलिंग रहे, एक स्त्रीलिंग, यह व्याकरण को सह्य नहीं।'

संबंध-विभक्ति का प्रयोग : वाजपेयी के मत से आत्मवाचक 'आप' में '-ने'; मध्यम पुरुष में '-रे' और बाक़ी समस्त स्थानों पर 'के' का प्रयोग होता है। इनके प्रयोग के संबंध में उनका कहना है :

(1) जब अस्तित्व-मात्र कहना हो या उत्पत्ति की सूचना देनी हो, तब संबंध-विभक्ति का ही प्रयोग होता है, न कि संबंध-प्रत्यय का। जैसे— राम के चार गौएँ हैं। राम के लड़की हुई है। संस्कृत में भी ऐसा ही है— 'रामस्य/तव पुत्री जाता'। होगा, न कि 'त्वदीया पुत्री जाता।' इस तरह, उत्पन्न होने की घटना को संबंध-मात्र के रूप में प्रकट कर देने का कमाल वे करते हैं। 'देवकी ने पुत्र प्रसव किया' न कह कर 'देवकी के पुत्र हुआ' कह कर काम चलाया जा सकता है। पर, 'प्रसव किया' क्रिया की उपस्थिति में कर्म-कर्तृ संबंध ही लाना होगा— 'देवकी ने पुत्र प्रसव किया'; तब संबंध-विभक्ति-मात्र से काम न चलेगा।

(2) दिशावाचक शब्दों के योग में भी तब संबंध-विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे— राम के दाहिनी ओर/बग़ल। पर, 'बग़ल' आदि दिशावाचक न हों तो संबंध-प्रत्यय लगेगा— 'राम की बग़ल में फोड़ा हो गया।' लेकिन, वाजपेयी का यह नियम ग़लत ठहरता है। डॉ. रामदेव त्रिपाठी ने इस पर

---

[14] *हिंदी शब्दानुशासन* : 168-70.

[15] वही : 131.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 202

उचित ही कहा है— 'राम की बग़ल में ही गोविंद का घर है' के साथ 'राम के दाहिनी बग़ल में गोविंद बैठा है' का प्रयोग और इसकी यह व्याख्या कि 'बग़ल' शब्द है तो स्त्रीलिंग ही किंतु 'राम के' के स्थान पर 'राम की' इसलिए नहीं होता कि 'के' संबंध-प्रत्यय नहीं, संबंध-विभक्ति है, बुद्धिग्राह्य नहीं। राम के दाहिने बग़ल में, अथवा राम की दाहिनी बग़ल में— दोनों प्रयोगों का समर्थन किया जा सकता है, 'ओर' तथा 'बग़ल' दोनों ही उभयलिंग माने जा सकते हैं, परंतु एक ही प्रयोग में एक विशेषण पुलिंग रहे, एक स्त्रीलिंग, यह व्याकरण को सह्य नहीं।'[16] 'राम के दाहिनी ओर'- कितना बेतुका है !'ओर' (स्त्री.) के विशेषण को तो 'दाहिना' से 'दाहिनी' कर लिया गया, पर 'राम की' जगह 'राम के' रखा गया, जो विशेषणीभूत ही है।

(3) वर्तनी-विधि : 'के' विश्लिष्ट प्रयुक्त होता है, '-रे', '-ने' संश्लिष्ट प्रयुक्त।

संबंध-प्रत्यय का प्रयोग : जहाँ भेद्य (विशेष्य) के संबंध में कुछ विशेष विधान करना हो, तो (संबंध) तद्धित प्रत्यय ही आता है(जिनमें 'क' प्रत्यय को कहीं सटा कर, कहीं हटा कर लिखते हैं, पर '-र', '-न' प्रत्ययों को सटा कर ही लिखते हैं)। जैसे— तेरा लड़का पढ़ता है। तेरी लड़की पढ़ती है। ऐसी स्थिति में संस्कृत में विकल्प हैं— विभक्ति भी, प्रत्यय भी। तव पुत्रः पठति। त्वदीयः पुत्रः पठति। वाजपेयी अपने इस नियम के ये उपनियम भी सुझाते हैं : (1) क, र, न संबंध-प्रत्ययों का प्रयोग 'संबंध' में ही नहीं, तादात्म्य या अभेद में भी होता है। जैसे- 'कबड्डी का खेल'। (2) कभी-कभी आरोप करने में भी 'क' आदि प्रत्यय लगते हैं। जैसे -'आकाश का समुद्र', 'जल का घर'। (3) संबंध-प्रत्ययों से कभी कर्तृत्व-कर्मत्व आदि का भी प्रतिपादन होता है। जैसे- 'फल हमारा भोजन है।' यहाँ 'भोजन' क्रिया है; उसका कर्म 'फल', 'हमारा' कर्तृत्व प्रकट कर रहा है। यहाँ क्रिया 'नाम'/संज्ञा-रूप में रहती है— जबकि 'राम काशी गया' में क्रिया कृदंत है, आख्यात रूप।

हिंदी में संश्लिष्ट विभक्ति '-इ' की खोज कर के भी वाजपेयी ने एक उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने 'उसे', 'इसे', 'मुझे', 'तुझे','जिसे' आदि में विश्लिष्ट विभक्ति 'को' के विकल्प में इसकी स्थिति मानी है। यहाँ कहना सिर्फ़ इतना है कि उन्हें 'इ' न मानकर 'ए' मानना चाहिए था। यदि संधि-लोभ से वे 'ए' न मान कर 'इ' मान रहे हैं,तो भी कहना होगा है कि 'ए' मानने पर भी संधि सम्भव है— पररूप संधि। 'ए' मानने से और भी लाभ हैं। बहुवचन में भी इस 'इ' का प्रयोग वे मानते हैं, पर कहते हैं कि तब ('यह', 'वह' आदि का रूप 'इन-उन' हो जाता है,) 'ह' विकरण का आगमन 'प्रकृति' तथा 'इ' के बीच हो जाता है। (वाजपेयी यहाँ भी 'ए' ही मानते तो ठीक था।) 'विकरण' वस्तुतः एक प्रकार का प्रत्यय ही है; जो 'प्रकृति' व 'मुख्य प्रत्यय' के बीच प्रकृति की आकार-वृद्धि मात्र के लिए आता है; अपना कोई अर्थ नहीं रखता— 'मुख्य प्रत्यय' से इसका यही भेद है। विकरणेतर प्रत्यय ही प्रकृति को नये अर्थ में प्रयुक्त करने की क्षमता रखते हैं— विकरण तो अर्थहीन होता है। वाजपेयी ने कहा कि 'संज्ञा या सर्वनाम से परे जब कोई विभक्ति आती है और बहुवचन प्रयोग करना होता है, तब बीच में यह 'ओं' विकरण आता है।'[17] वे 'ओं' को विकरण मानते हैं, पर यह विवादग्रस्त विषय है। इस प्रसंग में डॉ. अनंत चौधरी के इस तर्क से हमारी सहमति होनी चाहिए— 'यदि वाजपेयी का समर्थन करते हुए 'ओं' को विकरण मान भी लिया जाए, तो प्रश्न उठता है कि आकारांत संज्ञाओं के एकवचन रूपों के अंत में विभक्ति (परसर्ग) से पूर्व आने वाले 'ए' को विकरण नहीं मानने में क्या तुक है ?'[18] जैसे— 'लड़का' के रूप 'लड़के ने' में 'लड़के' के 'ए' को भी विकरण क्यों न मानें ?

---

[16] रामदेव त्रिपाठी (1986), : 429.

[17] किशोरीदास वाजपेयी (1949).

[18] *हिंदी व्याकरण का इतिहास* : 591.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 203

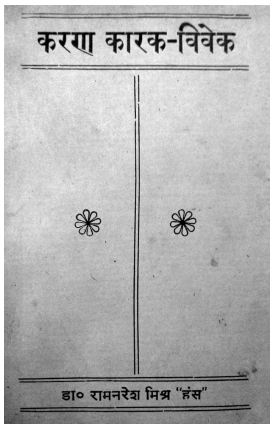

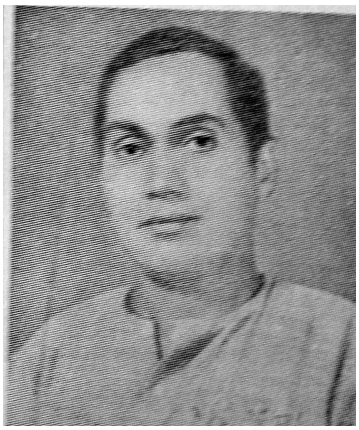

(यह 'ए' उपर्युक्त 'उसे' आदि के 'ए' से भिन्न तत्त्व है। 'उसे' आदि तो 'उसको' के विकल्प में प्रयुक्त है।) वाजपेयी ने 'ओं' विकरण मान कर भिन्न-भिन्न 'अंत' वाली संज्ञाओं से सविभक्तिक बहुवचन में इसको मिलाने के नियम दर नियम बनाए; वे उलझन-मात्र हैं।

वस्तुत: वाजपेयी हिंदी में शुद्ध 'विभक्ति-तत्त्व' की खोज के क़रीब पहुँच कर भी उससे अनजान रह गये और 'परसर्ग' को ही 'विभक्ति' मानते रहे। उनके द्वारा कथित विश्लिष्ट विभक्ति 'ने', 'को', 'से', 'में', 'पर', 'के' तथा संश्लिष्ट विभक्ति '-इ' (वस्तुत: '-ए' होगा), '-रे', 'विभक्ति' नहीं, 'संश्लिष्ट' व 'विश्लिष्ट' परसर्ग कहलाने चाहिए। जिस 'ओं' को ऊपर के वाक्य में वे विकरण कह रहे हैं, वह वस्तुत: हिंदी की एक शुद्ध 'विभक्ति' है तथा आकारांत संज्ञा के एकवचन में आया 'ए' भी 'विकरण' नहीं, 'विभक्ति' है। इसी प्रकार और भी विभक्तियाँ हैं। स्वयं वाजपेयी को इस सत्य का कुछ आभास मिला था— 'ध्यान रखना चाहिए कि एँ, आँ हिंदी की प्रथमा विभक्ति ही हैं, जो बहुवचन में केवल स्त्रीलिंग में ही लगती हैं।' (*राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण*) 'आँ स्त्रीलिंग शब्दों में लगने वाली विभक्ति है, जो कि अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों में 'एँ' बन जाती है- 'सड़कें', 'नहरें' आदि। यह विभक्ति बहुवचन में ही आती है।' 'विशेषणों में पृथक् विभक्ति हिंदी नहीं लगाती, पंजाबी लगाती है— मोटियाँ, रोटियाँ।'[19] पर, वाजपेयी की 'विभक्ति' की परिभाषा 'लिंग-वचन-निरपेक्षता' यहाँ नहीं घटती। स्पष्टत: वे 'परसर्ग' को 'विभक्ति' मान कर यह परिभाषा बनाते हैं, पर इन कथनों में 'शुद्ध विभक्ति' तत्त्व को अनजाने में ही इंगित कर रहे हैं। यहीं पर वे 'लड़का' आदि में आये 'आ' पुंप्रत्यय को 'पुंविभक्ति' कह रहे हैं— यह ग़लत है। जब वाजपेयी खुद 'विभक्ति' के लिए लिंग-वचन से निरपेक्षता वाली शर्त रखते हैं, तो पुलिंग अर्थ के साधक 'आ' को 'प्रत्यय' की जगह 'विभक्ति' कह कर अपने ही सिद्धांत की जड़ में मट्ठा क्यों डालते हैं?

कारक-विचार

हिंदी-व्याकरण-यात्रा का एक लम्बा दौर, 'कारक' व 'विभक्ति' को अभिन्न मान कर, एक का नामोल्लेख करते हुए दूसरे को उसी में विलीन करके चला है। कर्तादि को प्रथमादि विभक्ति कहकर या प्रथमादि विभक्ति को कर्तादि कारक/कर्ता विभक्ति आदि कह कर व्याख्यायित करने का भ्रांत तरीक़ा इसी मनोवृत्ति की देन है। कारक-विशेष का विभक्ति-विशेष से अव्यतिरेकी निश्चित संबंध रहता, तो भ्रमवश इस अभेदीकरण का होना स्वाभाविक भी था; पर ऐसा तनिक न होने के बावजूद इस तरह की भ्रामक धारणा का हिंदी व्याकरण-कर्ताओं के मस्तिष्क में दृढ़ हो जाना आश्चर्य की बात है।

वस्तुत: 'कारक' और 'विभक्ति' में ये स्पष्ट भेद होते हैं— (1) कारक (क्रियान्वित) प्रातिपदिक है, विभक्ति उस में जुड़ा प्रत्यय है। (2) एक विभक्ति अनेक कारकों में प्रयुक्त हो सकती है। (3) एक कारक में अनेक विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं। (4) बिना परसर्ग के भी (जिसे कई वैयाकरण

---

[19] *हिंदी शब्दानुशासन* : 165.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 204

'विभक्ति' कहते हैं) कारक प्रयुक्त हो सकता है। (5) विभक्ति केवल कारकों के अर्थ नहीं, कारकेतर संबंधों के अर्थ भी आती है। अत:, ने, से आदि परसर्गों को कर्ता, करण आदि के चिह्न भी नहीं कहा जा सकता; 'कारक = विभक्ति' इस अभेदीकरण की बात क्या?

वास्तविकता यह है कि इस अभेदीकरण के मूल में है अंग्रेज़ी ग्रैमर की 'केस' संबंधी अवधारणा; जो आंग्ल परम्परा के हिंदी-वैयाकरणों (जिसके लोकप्रिय उत्तराधिकारी बाद में कामताप्रसाद गुरु सिद्ध हुए) के माध्यम से हिंदी-व्याकरण पर आकर अमरबेल की तरह छा गयी। अंग्रेज़ी के प्रचलित ग्रैमरों में अर्थपरक धारणा 'कारक' एवं इसके साथ रूप-तत्त्व 'विभक्ति' की धारणा नहीं है; बल्कि इनकी जगह, 'केस' नामक अवधारणा है, जिसमें भारतीय व्याकरण के 'कारकत्व', कारकेतर संबंध, प्रातिपदिक-विभक्त्यंत (सुबंत) आदि सारी अलग-अलग चीज़ें अपने अपरिपक्व रूप में गड्डमड्ड होकर समाहित हैं और उसके बाद 'केस' को लेकर जिस अर्थ पर ज़ोर है, वह है वाक्य-प्रयुक्त नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) शब्दों के रूपांतर वाला अर्थ।[20] 'केस' ने हमारी 'कारक'-संबंधी सुचिंतित धारणा को ग्रस लिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज भले 'कारक=विभक्ति' की भ्रांति से हम उबर गये हों, पर इसके पद-चिह्न 'हिंदी-व्याकरण' की पगडण्डी पर 'अष्टधा कारक' की धारणा के रूप में आज भी कहीं-कहीं दिख जाते हैं। 'कारक' को 'केस' का पर्याय बना कर पेश करने के आग्रह के ही परिणामस्वरूप हिंदी-व्याकरण में 'संबंध' (शेष संबंध) तथा 'सम्बोधन' को भी कारक का दर्जा मिल गया। इसका एक कुपरिणाम यह भी हुआ कि 'नामिनेटिव डायरेक्ट केस' (साक्षात् संकेतित) के लिए 'कर्ता' शब्द का प्रयोग होने लगा, जबकि इस स्थिति में वाक्य का 'सब्जेक्ट' रहता है, जो कभी कर्ता, तो कभी कर्म होता है। 'सब्जेक्ट' का अर्थ 'कर्ता' नहीं है, बल्कि जो क्रिया को लिंग-वचनादि प्रदान करे, वह है 'सब्जेक्ट' यानी उद्देश्य। परंतु, 'केस = कारक' के भ्रम ने 'उद्देश्य (सब्जेक्ट) = कर्ता' का भ्रम फैलाया। उसी ने 'कारक = विभक्ति' के अभेदीकरण के लिए हिंदी-व्याकरण को गुमराह किया। उसी भ्रांति में हिंदी में आठ कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण व सम्बोधन) बना लिए गये, जिनके अंग्रेज़ी पर्याय क्रमश: नॉमिनेटिव, ऑब्जेक्टिव, इंस्ट्रुमेंटल, ऐब्लेटिव, वोकटिव, जेनेटिव, लोकेटिव तथा डेटिव माने गये।

हिंदी-व्याकरण में कारक-संबंधित बन चुकी ऐसी विषम परिस्थिति में किशोरीदास वाजपेयी का उदय सचमुच में एक उल्लेखनीय घटना साबित हुई, जिन्होंने हिंदी-व्याकरण के 'कारक'-लोक पर छा रहे कुहासे का भेदन कर स्वस्थ व सुलझे हुए विवेचन की किरणों से उसे नहलाया।

वाजपेयी 'कारक' की अर्थ-परक अवधारणा के पोषक वैयाकरण हैं। 'कारक संज्ञादि का रूप-विशेष है'— गुरु के इस मत का शोधन करते हुए, वे उसे अर्थ से जोड़ने का प्रशस्त कार्य करते हैं, जो संस्कृत-व्याकरण में बहुत गहराई और विस्तार से विवेचित है। वाजपेयी ने *राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण* (1949 ई.) में जैसा विवेचन किया था, प्राय: वही *हिंदी शब्दानुशासन* (1958 ई.) में भी अवतरित है। परिभाषा देते हुए वे कहते हैं— 'क्रिया के साथ जिसका सीधा संबंध हो उसे 'कारक'

---

[20] जे.सी. नेसफ़ील्ड (1908) : 24.

नेसफ़ील्ड ने 'केस' की परिभाषा दी है, 'द रिलेशन इन विच अ नाउन स्टैंड्स टू सम अदर वर्ड, ऑर चेंज ऑफ़ फ़ॉर्म बाइ विच दिस रिलेशन इज़ इंडीकेटिड, इज़ काल्ड द केस', यानी, (1) वाक्य में नाउन (संज्ञा, वैसे 'नाउन' में 'प्रोनाउन' को भी समाहित माना गया है) का अन्य शब्दों से संबंध अथवा (2) उस संबंध को दिखलाने वाले उनके रूपांतर को 'केस' कहते हैं। यह परिभाषा है. पर आगे के विवेचन से यह स्पष्ट उभर जाता है कि 'केस' से तात्पर्य वे मुख्यत: (2) को ही लेते हैं और (1) विवेचन में प्राय: कहीं नहीं है (हाँ, ध्वनित मान सकते हैं).

बहुत आगे चलकर, प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक सी.जे.फ़िल्मोर ने 'केस' का विचार अर्थपरक अवधारणा के रूप में अपनी कृति *केस फ़ार केस* (1968) में किया. उन्होंने किसी भाषा में मुख्यत: पाँच 'केस' माने— अभिकर्ता (एजेंट), करण (इंस्ट्रूमेंट), अनुभवकर्ता (एक्सपीरिएंसर), स्थान व कर्म (प्लेस ऐंड ऑब्जेक्ट), अधिकरण (लोकेटिव).

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 205

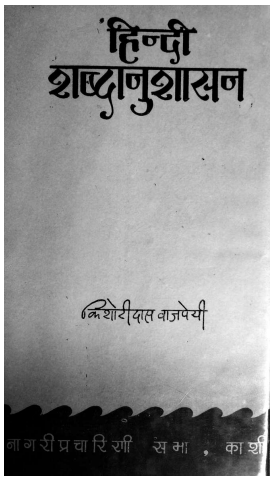

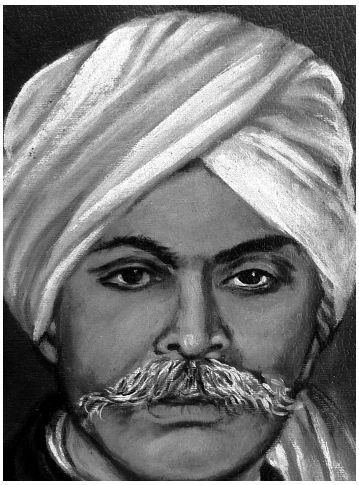

कहते हैं।'[21] अर्थात्, कारकत्व संज्ञा/सर्वनाम का रूप नहीं, बल्कि वह अन्वय (क्रिया-जनकता) है, जिसे व्याकरणेतर दर्शन में 'आकांक्षा' कहते हैं। जब तक किसी पद का क्रिया के साथ जन्य-जनक भाव नहीं होता, तब तक उस पद में कारकता नहीं होती। वे मानते हैं कि 'कारक (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान तथा अधिकरण) सिद्ध होते हैं और क्रिया साध्य होती है, विधेय होती है। राम मोहन को पुस्तक देता है। यहाँ 'राम' पहले से विद्यमान है, मोहन भी विद्यमान है और पुस्तक भी सामने है। परंतु, देना क्रिया विद्यमान नहीं है। यह साध्य है।'[22] वाजपेयी कारक-पद का संबंध केवल क्रियापद से मानते हैं, गुरु वाक्यगत किसी पद से। इसी से इन दोनों की कारक-संख्या में भेद है। वाजपेयी भारतीय व्याकरण-दर्शन के अनुगामी होकर विचार करते हैं और इस शुद्ध तथ्य की उपलब्धि कर लेते हैं 'दुनिया भर की भाषाओं में कारक छह ही होते हैं, न कम न ज़्यादा। परंतु कारकत्व प्रकट करने के ढंग अलग-अलग हैं।'[23] इसी तरह का विचार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का भी है— 'कारक वे पद हैं जिनका क्रिया के साथ योग होता है। ऐसे पद केवल छह प्रकार के हैं— कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। ... संसार की किसी भाषा में छह कारक अवश्य रहेंगे, रूप उनके चाहे भिन्न हों। ... यह क्रिया के साथ वाक्य के भीतर के नामों (सत्त्वप्रधानानि नामानि— सब्सटेंटिव) का संबंध निश्चित करते हैं।'[24] फिर, आचार्य द्विवेदी उनमें भी 'कृ' धातु से बने कारकों को ही वास्तविक कारक मानते हैं। 'अपादान', 'सम्प्रदान' तो 'दा' धातु से बने हैं। उनके मत से ये दोनों 'शिष्टाचारवश' कारक कहलाते हैं (केस बाई कर्ट्सी)[25] वाजपेयी शुरू से ही यह मानते रहे कि कारकत्व 'अर्थ' में होता है, न कि 'शब्द' में। तभी तो *ब्रजभाषा का व्याकरण* में उन्होंने कहा था— 'राम पुस्तक पढ़ता है'— वाक्य में पढ़ने का कार्य करने वाला कर्ता 'राम' शब्द नहीं, बल्कि राम नामक लड़का ही कर्ता है। उस लड़के का बोध 'राम' शब्द से होता है, इसलिए 'राम' शब्द को भी व्याकरण में कर्ता कहेंगे। इसी से उनका मत है कि कारकत्व का निर्णय अर्थ की दृष्टि से हो सकता है, न कि विभक्ति-चिह्न से। वाजपेयी के द्वारा किये गये छह कारकों के विवेचन इस तरह हैं :

1. कर्ता कारक : 'स्वतंत्रः कर्ता। क्रिया के करने न करने में जो स्वतंत्र हो, उसे कर्ता कहते हैं। जो करता है, वही कर्ता है।'[26] 'क्रिया से मुख्य संबंध तो कर्ता का ही है।'[27] वे उदाहरण देते हैं— नदी में पानी बहता है। राम पानी पीता है। पेड़ पर आम पकता है। रेखांकित अंश 'कर्ता' हैं।

---

[21] *हिंदी शब्दानुशासन* : 165.
[22] वही : 164.
[23] वही : 607.
[24] हजारी प्रसाद द्विवेदी (2004) : 29.
[25] रामनरेश मिश्र 'हंस' (1975).
[26] *हिंदी शब्दानुशासन* : 126.
[27] किशोरीदास वाजपेयी (संवत् 2038) : 41.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 206

2. कर्म कारक : 'जो किया जाता है, उसे हिंदी में 'काम' कहते हैं। यह 'काम' संस्कृत 'कर्म' का तद्भव रूप है।'[28] 'कर्ता के अनंतर दूसरा कारक है 'कर्म', जिसका क्रिया से निकटतम संबंध है। सकर्मक क्रियाओं में कर्म मिलेगा, अकर्मक क्रियाओं में ('राम सोता है' आदि में) कर्म होता ही नहीं।'[29] उनके मत से क्रिया का फल भी इन दो कारकों पर ही पड़ता है, कभी कर्ता पर, कभी कर्म पर। अकर्मक क्रिया में फल कर्तृगामी और सकर्मक क्रिया में कर्मगामी होता है। अन्य किसी कारक पर फल नहीं पड़ता। ये दो कारक क्रिया की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं को देख कर भाषा में क्रिया-पद चलते हैं। जब करण या अधिकरण आदि का प्रयोग गौण कर्ता की तरह होता है,तब क्रिया उन्हीं के अनुसार होती है। जैसे— चाकू अँगुली काट लेती है।[30]

3. करण कारक : 'क्रिया की निष्पत्ति में जिसकी सहायता कर्ता लेता है, उसे करण कहते हैं।'[31] जैसे— राम ने बाण से रावण को मारा।

4. सम्प्रदान कारक : 'जिसे कोई चीज़ दी जाती है, उसे सम्प्रदान कहते हैं।'[32] पर, वाजपेयी 'सम्प्रदान' को 'दा' धातु (देना क्रिया) से बाँध कर न चलते तो ज़्यादा अच्छा होता। कारण, मूल *अष्टाध्यायी* भी 'सम्प्रदान' को 'दा' धातु से नहीं बाँधती— 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (*अष्टाध्यायी,* 1.4.32) यानी, कर्ता कर्म के द्वारा जिसे चाहता है, वह सम्प्रदान है। इस सूत्र के वार्तिक में कहा गया है— 'क्रियया यमभिप्रैति सोपि सम्प्रदानम्'-कर्ता क्रिया के द्वारा जिसे चाहता है, वह भी सम्प्रदान है। वार्तिककार उदाहरण देकर समझाता है— 'पत्ये शेते' (अर्थात्, पति के लिए सोती है।)[33] *वैयाकरणसिद्धांतकौमुदी* ने 'सम्प्रदान' को 'दान' कर्म से बाँध दिया है— 'दानस्य कर्मणो यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्'। पर, उसे मान लेने पर हिंदी में कई वाक्यों में आये सम्प्रदान ('वह दरजी को कपड़ा देता है। सलमा किताब के लिए बाज़ार गयी। राम को मिठाई रुचती है। पढ़ने को मन करता है' आदि) की व्याख्या भी मुश्किल हो जाएगी।

5. अपादान कारक : 'जिससे कोई चीज़ अलग हो, उसे अपादान कहते हैं।'[34] पेड़ से पत्ता गिरा।

6. अधिकरण कारक : 'आधार को व्याकरण में अधिकरण कहते हैं।'[35] वे अधिकरण के दो प्रकार मानते हैं— (1) औपश्लेषिक अधिकरण, और (2) वैषयिक अधिकरण। उनके अधिकरण-प्रयोग के उदाहरण हैं— पुस्तक संदूक में है। मेरा मन वैराग्य में है। तिलों में तैल। पर, अधिकरण की उनकी व्याख्या अपर्याप्त है।

जैसा कि पूर्व-संकेतित है, वाजपेयी 'सम्बोधन' व 'संबंध' को कारक मानने का प्रतिवाद करते हैं। उनके अनुसार, 'सम्बोधन' कर्ता, कर्म आदि में भी गतार्थ हो सकता है, जैस— 'राम, जल्दी आओ' (कर्ता में); 'राम, तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ' (गौण कर्म में)। पर, वाजपेयी की यह बात ग्राह्य नहीं है। यहाँ प्रथम वाक्य में 'तू' अध्याहृत है, वही कर्ता है। दूसरे वाक्य में तो साफ़ 'तुम्हें' में कर्मत्व है। हाँ, 'सम्बोधन' व 'संबंध' को अलग कारक न मानने का उनका मत ठीक है।

---

[28] वही : 42.

[29] *हिंदी शब्दानुशासन.*

[30] वही : 139.

[31] वही.

[32] *सरल शब्दानुशासन* : 44.

[33] यह कैसा उदाहरण है ? स्त्री की तमाम प्रशस्त भूमिकाएँ वैयाकरण के दिमाग़ से नदारद हो गयीं और और एकमात्र 'पति की यौन-सेवा या यौन-दासता' का उदाहरण ही उस के मस्तिष्क में स्त्री की एकमात्र पहचान-सा बैठ गया है. यह उसकी कूढ़मगज़ी का नमूना है. स्त्री-विरोधी ऐसे पूर्वग्रहों से व्याकरण-सा वस्तुनिष्ठता का दावेदार शास्त्र भी पुरुषवादी बन जाता है.

[34] *सरल शब्दानुशासन* : 44.

[35] वही : 44.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 207

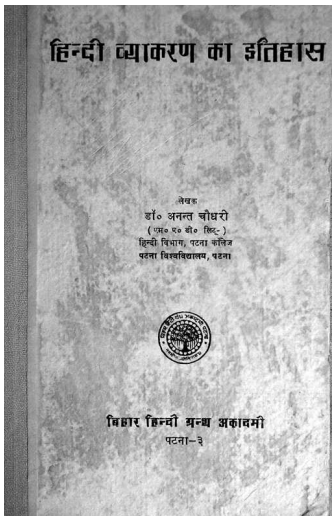

उनके मत से कारक विभिन्न विभक्तियों (यानी, परसर्गों) से प्रकट किये जाते हैं, पर कहीं बिना विभक्ति के ही कुछ कारक (कर्ता व कर्म कारक प्राय:) आते हैं। कारकों के साथ लगने वाली विभक्ति को 'कारक-विभक्ति' कहते हैं।[36]

वाजपेयी ने *राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण* में निम्न उदाहरणों में सम्प्रदान मानते हुए 'को' का सम्प्रदानार्थ प्रयोग माना है— (1) राम को माँ ने दूध दिया। (2) हम सब को ईश्वर ने विवेक-बुद्धि दी है। (3) बच्चों को फल अवश्य देने चाहिए। पर, डॉ. अनंत चौधरी ने न केवल इस बात का खण्डन किया है कि 'इन उदाहरणों में सम्प्रदान है', वरन् 'सम्प्रदान में 'को' चिह्न का प्रयोग होता है', इस बात का भी खण्डन किया। वे कहते हैं कि संस्कृत के 'दाने सम्प्रदानम्' का अंधानुकरण करते हुए 'देना' क्रिया के साथ आने वाले प्राणिवाचक कर्म को सम्प्रदान कारक मानकर चलना हुआ यह। चौधरी ने 'देना' को द्विकर्मक मान कर उक्त उदाहरणों में दो-दो कर्म माने हैं तथा सम्प्रदान का स्थान रिक्त माना है— 'राम ने माँ को (पीने के लिए) दूध दिया।', 'हम सबको ईश्वर ने (सोचने-समझने के लिए) विवेक बुद्धि दी है।', 'बच्चों को (स्वास्थ्य के लिए) फल अवश्य देने चाहिए।' वे 'राम को', 'हम सबको', 'बच्चों को' को 'गौण कर्म' कहते हैं। वे कहते हैं— 'प्राणिवाचक शब्द के साथ जहाँ कहीं भी 'को' आता है, वह कर्म कारक ही होता है।'[37] पर, चौधरी का कथन अतिवादी है। क्या 'राम को जाना है' में भी 'राम' कर्म ही है? ('राम' वस्तुत: 'कर्ता' है तथा यह 'को' संस्कृत षष्ठी के अर्थ में हिंदी में एक अलग परसर्ग है।) साथ ही, वस्तुत: द्विकर्मक स्थिति में मूल कर्म तो एक ही होता है, दूसरा कथित कर्म किसी अन्य कारक का उदाहरण होता है, परंतु प्रयोक्ता की विवक्षा के अधीन होकर कर्मवत् बना होता है, उसे ही 'अकथित कर्म' या 'गौण कर्म' कहते हैं। उक्त उदाहरणों में 'राम', 'हम सब', 'बच्चों' (वस्तुत: 'बच्चे') सम्प्रदान ही हैं, पर अविवक्षावश कर्मवत् हो गये हैं, 'द्विकर्मक धातु' प्रयोग से ऐसा हुआ। अत: वाजपेयी का विवेचन ग़लत नहीं है। (अंग्रेज़ी में भी सम्प्रदान 'इनडायरेक्ट आब्जेक्ट' कहलाता है।)

चौधरी द्वारा सम्प्रदान का विभक्ति-चिह्न 'के लिए' बतलाया गया। वह सम्प्रदान में नहीं, दूसरे प्रकार की चतुर्थी विभक्ति (तादर्थ्य चतुर्थी) में आता है, पर हिंदी में सम्प्रदान के नाम पर अधिकतर 'के लिए' ही चल रहा है, सो अलग बात है। लेकिन, 'सम्प्रदान' का चिह्न तो 'को' ही है। 'को' को कर्म के साथ रूढ़-सा करने के डॉ. चौधरी के आग्रह से बहुत सारी उलझनें पैदा होती हैं। अगर उनकी बात सही मान ली जाए, तो 'राम को मिठाई रुचती है' में भी उन्हें सम्प्रदान न मान कर कर्म ही मानना होगा। वे 'राम को भूख लगी है', 'लड़कियों को प्यास लगी है', 'तुम को क्रोध आ गया', 'बच्चे को दस्त आ रहे हैं' में रेखांकित को अधिकरण मानने का खण्डन कर इन्हें भी 'कर्म' ही ठहराते हैं। 'क्योंकि ये सब-के-सब क्रिया के फल के भोक्ता या आधार हैं, क्रिया के आधार नहीं।'[38] उक्त उदाहरणों में चौधरी कहते हैं कि अधिकरण के स्थान रिक्त हैं, जैसे— 'राम को (पेट में/जंगल में/घर पर) भूख लगी है' आदि। परंतु, 'कर्ता' व 'कर्म' (क्रिया के परिणाम या फल इन्हीं पर पड़ता है) के आधार को 'अधिकरण' कहा जाता है— यह परिभाषा है। तब तो इन उदाहरणों में रेखांकितों को

---

[36] *हिंदी शब्दानुशासन* : 140.

[37] *हिंदी व्याकरण का इतिहास* : 593.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 208

'अधिकरण' कारक होना चाहिए। भूख, दस्त आदि या तो 'कर्म' हैं या 'कर्ता'— बाक़ी कोई कारक नहीं। तब तो इनके आधार राम, लड़कियाँ, तुम, बच्चे को 'अधिकरण' कारक ही होना चाहिए। चाहे ये जो भी कारक सिद्ध हों, पर इन्हें 'को' चिह्न के आधार पर चौधरी का 'कर्म' कहना ठीक नहीं। 'लगना' आदि को क्रिया न मान कर 'भूख लगना' आदि को मानें, तो क्रिया के प्रत्यक्ष आधार 'अधिकरण' नहीं, वरन कर्ता/कर्म होते हैं; अधिकरण तो इनके माध्यम से क्रिया का आधार होता है। ऐसी स्थिति में 'राम' आदि को कर्ता मानना होगा। 'अनुभवकर्ता' ('राम' आदि) को 'कर्ता' ऐसे ही प्रसंगों में माना जा सकता है। तब भी चौधरी क्या इन्हें ('राम' आदि 'कर्ता' को) कर्म ही मानेंगे?। वे इसे भी ख़ारिज करते हैं— 'गया-गयी अकर्मक क्रिया है तथा 'काशी' और 'वृंदावन' विभक्ति-रहित अधिकरण।'[39] पर, चौधरी यहाँ भी भ्रांत हैं। 'जाना' क्रिया को अकर्मक ठहराना भी ठीक नहीं है, उसकी स्थिति तो सकर्मक और अकर्मक के बीच की मानी जा सकती है। यहाँ वह सकर्मक है। कर्म = कर्ता का क्रिया द्वारा प्राप्य। तब, 'काशी' आदि कर्म ही हैं। क्रिया का या कर्ता का आधार तो मार्ग है, जो अध्याहृत है यहाँ ('मार्ग' भी अत्यंत साधक हो कर 'से' के साथ करण ही बनेगा।) अर्थात्, वाजपेयी का मत सही है।

विभक्तियों का प्रयोग/उपयोग : वाजपेयी की यह बड़ी देन है कि विभक्तियों (मतलब परसर्गों) के प्रयोग-स्थल का वे विस्तार से उल्लेख करते हैं, जो अत्यंत प्रयोजनीय विषय है। उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और व्यापक दृष्टि की थाह मिलती है। उनके अनुसार, 'विभक्तियों का प्रयोग हिंदी में अत्यंत सुव्यवस्थित-नियंत्रित है।'[40] वे 'ने' का प्रयोग-क्षेत्र बहुत छोटा व स्पष्ट तथा 'को' व 'से' का प्रयोग-क्षेत्र बहुत बड़ा बतलाते हैं। उनके द्वारा निर्देशित प्रयोग-स्थलों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1. 'ने' : 'ने' विभक्ति केवल कर्ताकारक में लगती है, जबकि क्रिया सकर्मक हो और भूतकाल में प्रयोग हो।'[41] 'लोगों ने 'ने' को करण कारक की विभक्ति ग़लती से समझ लिया।' इस नियम के दो अपवादों का वे ज़िक्र करते हैं— (क) 'यदि सकर्मक क्रिया गत्यर्थक हो, तो फिर कर्ता निर्विभक्तिक ही आता है। -राम काशी गया।' पर, 'राम पुस्तक लाया'— में यह बात ही नहीं, फिर 'ने' क्यों नहीं। वाजपेयी इसका समाधान देते है कि 'लाया' ('ले+आ') संयुक्त धातु है। पर, उनकी यह बात गले नहीं उतरती। (ख) भूतकाल में अकर्मक क्रियाएँ भी प्रेरणा में सकर्मक हो जाती हैं ... तब उनका निर्विभक्तिक प्रयोग नहीं होगा, 'ने' लगेगा। जैसे— माँ ने बच्चे को सुलाया।

2. 'को' : 'को' का प्रभाव-क्षेत्र बहुत अधिक है। उनके अनुसार इसी का भाई 'इ' (वस्तुतः 'ए' होगा) है, जो यह, वह, जो, कौन सर्वनामों में 'को' के विकल्प में लगता है। इनके बहुवचन में अनुस्वार-युक्ति होती है। उनके मत से इनके प्रयोग-स्थल ये हैं— (क) कर्ता में— (1) कृदंत क्रिया हो और 'अवश्यकर्त्तव्यता' (= क्रिया की अनिवार्यता) प्रकट करनी हो। जैसे— राम को काशी जाना है। 'चाहिए' के योग में विधि सूचित हो तब भी। जैसे— राम को जाना चाहिए। (2) 'मिलना' क्रिया का अर्थ यदि प्राप्ति हो, तब कर्ता में। जैसे— लड़कों को पुरस्कार मिला। मुझे मेले में वे मिल गये। (पर, 'मिलना' का अर्थ संगतीकरण हो तब 'से'— मैं उन से मिला था।) (ख) कर्म में—

---

[38] वही : 593.

[39] वही : 628-29.

[40] *सरल शब्दानुशासन* : 46.

[41] *हिंदी शब्दानुशासन* : 145.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 209

सामान्यत: कर्मार्थ 'को' प्रसिद्ध ही है। फिर भी, इसका प्रयोग निम्न में -(1) 'मन' आदि के योग में। जैसे— वेदांत पढ़ने को मन करता है। (मेरे मत से यहाँ 'पढ़ना' क्रियार्थक संज्ञा का रूप बना है 'पढ़ने को', जो 'सम्प्रदान' है)। (2) जब 'दे' सहायक क्रिया की तरह हो— राम को अब पुस्तक पढ़ने दो। (3) नैसर्गिक आवेगों के उद्रेक में। जैसे— बीमार को पैख़ाना हुआ। तुम्हें क्रोध हो आया। (पर, संतान होने में नैसर्गिक आवेग नहीं, शुभ घटना है, अत: 'के'— राम के लड़की हुई।) यहाँ वाजपेयी का कथन कुछ आपत्तिजनक है। पहली बात यह कि 'बीमार को' व 'तुम्हें' को कर्म मानना ठीक नहीं। दूसरी बात यह कि 'राम को लड़की हुई' प्रयोग भी होगा। यहाँ 'को' पूर्वी हिंदी का उसी अर्थ में षष्ठ्यर्थ परसर्ग है, जिस अर्थ में पश्चिमी हिंदी में 'के' आता है। इसलिए, 'बीमार के पैख़ाना हुआ' प्रयोग भी ठीक है। (4) प्रेरणार्थक क्रिया के गौण कर्म में। जैसे— पिता पुत्र को पुस्तक पढ़ाता है। पर, यदि क्रिया गौण कर्म के हित में न जा कर कर्ता के हित में जाए तब 'से'— बच्चे से साग मँगाती है। (5) 'बनाना' क्रिया जब उत्पादन के अर्थ में न आकर परिष्कार अर्थ में आये तब आलम्बन में। जैसे— धोती को अच्छा बनाओ। (उत्पत्ति में, 'धोती अच्छी बनाओ') (ग) सम्प्रदान में— गुरु शिष्य को विद्याधन देता है। (घ) अधिकरण में— राम को भूख लगी। (परंतु, वाजपेयी पीछे नैसर्गिक आवेगों में 'कर्म' मानते हैं। जैसे— बीमार को पैख़ाना हुआ। अजीब विसंगति है।) रात को ग्यारह बजे गाड़ी जाएगी।

3. 'से' : कर्ता, कर्म, करण, अपादान कारकों के लिए तथा अनेक जगह 'उपपद विभक्ति' रूप में। (क) कर्ता में— 'जब क्रिया में कर्ता की असमर्थता आदि सूचित करनी हो, तब (कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया का) कर्ता 'से' विभक्ति के साथ आता है— बुड्ढे से चने नहीं चबते।'[42] पर, 'यदि कर्ता में असामर्थ्य विवक्षित न हो, काम ही दुष्कर हो, तब कर्ता में 'से' का प्रयोग न होगा— कई बार प्रयत्न करने पर भी कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर को फ़ारसी लिपि न आयी।'[43] (कर्मवाच्य) (ख) गौण कर्म में- राम से मैंने सब कह दिया। प्रेरणार्थक क्रिया के प्रयोज्य कर्ता (गौण कर्म) में तब, जब काम प्रेरक कर्ता के हित में जाता है— '(वह) बच्चे से साग मँगाती है।' (ग) करण में— हम दाँतों से भोजन चबाते हैं। (घ) अपादान में— पेड़ से पत्ते गिरते हैं। (ङ) मनोभावों के आलम्बन में- राम से गोविंद का स्नेह है। (विवक्षाधीन होकर अधिकरण भी सम्भव है। जैसे— राम पर गोविंद का स्नेह है।) यदि वैर-प्रेम के आलम्बन परस्पर दोनों हों, तो फिर 'में' विभक्ति लगेगी— 'साँप और नेवले में वैर है।' (च) लाभ, प्रयोजन आदि के योग में— जिससे कोई प्रयोजन हो। जैसे— राम से गोविंद का क्या प्रयोजन/क्या लाभ? (छ) हेतु में— चिंता से आदमी मर जाता है।

4. 'में' और 'पर':- (क) अधिकरण में। भीतर कोई चीज़ हो तो 'में' का प्रयोग— घड़े में पानी है। ऊपर कोई चीज़ हो, तो 'पर' का प्रयोग— पेड़ पर कौआ बैठ जाता है। (ख) क्रिया के आनंतर्य में- अच्छी तरह सो चुकने पर ही चलूँगा। राम के चले जाने पर गोविंद सो गया।

5. के, -रे, -ने संबंध-विभक्ति— इनका प्रयोग-क्षेत्र पीछे विवेचित हो चुका है।

किशोरीदास वाजपेयी ने 'कारक' की अपनी अर्थपरक व्याख्या द्वारा, हिंदी-व्याकरण में आंग्ल पद्धति से प्रेरित 'कारक की रूपपरक अवधारणा' (जिसके पुरस्कर्ता कामताप्रसाद गुरु रहे) के अतिवाद को जहाँ तोड़ा, वहीं अर्थपरकता के अपने अतिशय आग्रह के कारण हिंदी में 'कारक' को समझने की दिशा में 'अर्थपरक अवधारणा' का एक दूसरा अतिवाद भी (अपने अनजाने में) खड़ा कर दिया।

पहली धारणा के अंतर्गत, वाक्यगत किसी तरह के संबंध को (चाहे वह क्रियेतर दो पदों के बीच का संबंध ही क्यों न हो) 'कारकत्व' समझने की ही भूल नहीं की जाती, बल्कि विभक्त्यंत पद

---

[42] वही : 155.

[43] वही : 156.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 210

(सुबंत) मात्र को ही 'कारक' कह दिया जाता है। आठ कारक इसी समझ की देन रहे हैं। इसके पुरस्कर्ता गुरु 'रामचंद्र ने', 'समुद्र पर' जैसे रूपों को कर्ता कारक, अधिकरण कारक आदि मानते हैं। रूपपरक इस धारणा के परिणामस्वरूप हर भाषा में कारक-संख्या अलग हो जाती है, क्योंकि इस तरह के रूप हर भाषा में अलग होते हैं। 'कारक' जब क्रियान्वित प्रातिपदिक को कहते हैं, तो उक्त 'रामचंद्र', 'समुद्र' आदि 'कारक' कहे जाएँगे। पर, असली आशय इन शब्दों में निहित कर्तृत्व, अधिकरणत्व आदि से होता है। परंतु, इस धारणा में पदार्थ में नहीं, पद में कारकता मानी जाती है। वहीं दूसरी अवधारणा के अंतर्गत पदार्थ में तो कारकता मानी जाती है, परंतु पदार्थ को लौकिक अर्थ तक खींच लिया जाता है। चाहे प्रस्तुत वाक्य में रूप कुछ भी हो अथवा प्रस्तुत वाक्य की संरचना से कुछ भी अर्थ-ध्वनि निकल रही हो, परंतु लौकिक अर्थ-दृष्टि से जो सम्भव-असम्भव हो, उसकी बात बीच में लाकर इसमें कारकत्व की व्याख्या या विभेदन किया जाता है। किशोरीदास वाजपेयी इसके पुरस्कर्ता बन कर उभरे हैं। इसी अर्थपरकता से ग्रस्त होकर वे *हिंदी शब्दानुशासन* में (क्रिया को समर्पित) 'उत्तरार्द्ध' के दूसरे अध्याय ('उपधातु, प्रेरणा/द्विकर्तृक क्रिया, त्रिकर्मक क्रिया, अकर्तृक क्रिया/कर्मादिकर्तृक क्रिया') के अंतर्गत, कारक-संबंधी एक पर एक ऐसे विश्लेषण प्रस्तुत करते जाते हैं, जो उलझे हुए तो हैं ही, पर्याप्त भ्रांति के शिकार भी हैं। उदाहरणस्वरूप, 'कपड़े सिल रहे हैं' (जिसे वे 'अकर्तृक' या 'कर्मकर्तृक' प्रयोग[44] कहते हैं) में 'कपड़े' को वे कर्ता नहीं मानते। उनका कहना है कि यहाँ 'कर्म' का प्रयोग कर्ता की तरह होने पर भी वह (कर्म) वास्तविक कर्ता नहीं बन जाता, बल्कि कर्म ही है। इसीलिए, इस तरह की क्रिया को वे 'अकर्तृक' भी कहते हैं। पर, 'अकर्तृक' कहना तो उन्हीं के इस मत के विरुद्ध है कि 'कोई भी क्रिया कर्ता के बिना सम्भव नहीं, कर्ता तो किसी क्रिया का होता ही है।' दरअसल, वे यह देखने में चूक जाते हैं कि प्रस्तुत वाक्य की संरचना में (यानी 'सिल रहे हैं' क्रिया के द्वारा), 'कपड़े' का कर्तापन कहा जा रहा है। इसी तरह, 'माँ बच्चे को दूध पिलाती है' में क्रिया को वे एक साथ द्विकर्मक और द्विकर्तृक कहते हैं।[45] एक तरीक़े से विचार करते हुए वे 'दूध' को असली कर्म और 'बच्चा' को गौण कर्म (यानी गौणी लक्षणा वृत्ति से 'कर्म' है) मानते हुए, क्रिया को 'द्विकर्मक' कहते हैं। फिर, दूसरे तरीक़े से विश्लेषण करते हुए 'बच्चा' को असली कर्ता और 'माँ' को गौण कर्ता मानते हुए, क्रिया को 'द्विकर्तृक' कहते हैं। फिर, 'प्रेरणा की भी प्रेरणा' की चर्चा करते हुए 'त्रिकर्मक क्रिया' की भी बात रखते हैं। जैसे— 'माँ नौकर से बच्चे को दूध पिलवाती है' का वे इस तरह का विश्लेषण करते हैं— 'बच्चा' (कर्ता; गौण कर्म), 'नौकर' (गौण कर्म)', 'माँ' (प्रेरक कर्ता, यानी पूर्वोक्त गौण कर्ता), 'दूध' (मुख्य कर्म)। इस प्रकार का विश्लेषण करते हुए उन्होंने मुख्य कर्म 'दूध' के साथ दो गौण कर्मों (बच्चा, नौकर) की स्थिति मानी और क्रिया को 'त्रिकर्मक' कहा। वस्तुत:, वाजपेयी ने कोरा अर्थाधारित विवेचन करके ही इन विश्लेषणों को काफ़ी उलझा दिया है। 'माँ बच्चे को दूध पिलाती है' और 'माँ नौकर से बच्चे को दूध पिलवाती है' जैसे वाक्यों में 'बच्चा' को सिर्फ़ इसलिए असली कर्ता कहते जाना कि 'बच्चा माँ का दूध पीता है', 'बच्चा दूध पीता है' में कर्ता है, घोर भ्रांति है। जब प्रस्तुत वाक्य में प्रयोज्य कर्ता 'बच्चा' कर्म का परसर्ग तक ग्रहण कर के कर्म की भूमिका में ढल चुका है, तब उसे 'कर्ता' कहते जाने का क्या तुक? सही बात तो यह है कि इस वाक्य में कर्ता केवल 'माँ' है, क्योंकि क्रिया 'पिलवाती है' से उसी का संबंध है; 'नौकर' या 'बच्चा' का संबंध क्रमश: 'पिलाता है', 'पीता है' क्रियाओं से था; उसी के संदर्भ में उनका कर्तृत्व था। अत:, प्रयोज्य कर्ता भी कहना अलंकार मात्र

---

[44] वही : 411, 470.

[45] वही : 457.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 211

है। 'माँ' को प्रयोजक कर्ता कहना विशेषण लगा के कहना हुआ, जबकि उसे तो सीधे 'कर्ता' कह सकते हैं। 'बच्चा' 'प्रयोज्य कर्म' या 'गौण कर्म' है। नौकर 'प्रयोज्य करण' है, क्योंकि यहाँ 'से' चिह्न लेकर साधन-रूप हो चुका है। कुल मिला-जुला कर बात यही है कि इस वाक्य की क्रिया को 'द्विकर्मक' भले मान लें, 'त्रिकर्मक' मानना तो अप्रलाप है। सही में तो 'द्विकर्मक' भी होता नहीं कुछ। स्वयं वाजपेयी को पता है- 'कर्म तो वस्तुत: एक ही होता है; परंतु किसी दूसरे कारक का प्रयोग इस तरह किया जाता है कि वह भी कर्म-सा ही लगता है...।'[46]

वस्तुत: 'कारकत्व' वैयाकरणिक अर्थ-सापेक्ष अवधारणा है, न कि लौकिक अर्थ-सापेक्ष। व्याकरणिक अर्थ का नियामक वाक्य-संरचना होती है। अत: 'कारकत्व' का निर्णय वाक्य-संरचना और व्याकरणिक अर्थ की मिलित दृष्टि से होना चाहिए। 'स्वतंत्र: कर्ता' की व्याख्या लौकिक स्तर पर करने लगें तो 'पतंग उड़ती है' में 'पतंग' कर्ता नहीं है, क्योंकि पतंग स्वयं नहीं उड़ सकती, जब तक कि कोई उसे उड़ाए नहीं। पर, व्याकरणिक अर्थ में वह कर्ता है, क्योंकि प्रस्तुत वाक्य में उड़ने की क्रिया तो 'पतंग' की ही है; किसी व्यक्ति के लिए तो वह क्रिया 'उड़ाने' की हो जाएगी। (जैसे— कंचनमाला पतंग उड़ा रही है।) वाक्य-संरचनागत क्रिया 'उड़ती है' का प्रत्यक्षतम आश्रय 'पतंग' ही है, अत: वही कर्ता है (इसी तरह, कोष्ठकस्थ वाक्य में 'कंचनमाला' कर्ता है, क्योंकि 'उड़ा रही है' क्रिया का आश्रय वही है।)। कर्ता की 'स्वतंत्रता' का तात्पर्य पारमार्थिक स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि प्रस्तुत वाक्य-संरचनागत 'अपेक्षाकृत स्वतंत्रता' से है। 'लड़का बुलाया गया/पतंग उड़ाई गयी'— में लड़का/पतंग 'कर्म' है। 'कर्ता' छिपा है। पर, 'पतंग उड़ती है' या 'कपड़े सिलते हैं' में कर्ता की अनुपस्थिति नहीं, अभाववश 'कर्म' ही कर्ता बन गया है। इस तरह, यहाँ 'पतंग' व 'कपड़े' पूरी तरह कर्ता हैं।

कोई क्रिया अपने अर्थ की छाया बदल कर मूल कर्ता को छोड़ कर किसी अन्य कारक की क्रिया को कहने लगती है, तब वहाँ उस क्रिया का वह कारक ही कर्ता बन जाता है— यह वक्ता की विवक्षा से होता है। विवक्षानुसार 'कृ' धातु से बने मूल चारों कारक (कर्ता, कर्म, करण व अधिकरण) 'कर्ता' बन कर आ सकते हैं ; पर इस प्रक्रिया में वाक्य की संरचना बदलती जाती है। यह ध्यायव्य है कि कारक-विभक्ति का स्वरूप/वाक्य-संरचना अगर बदलती है तो कारकत्व में भी सूक्ष्म अंतर आता अथवा 'धातु' की अर्थ-छाया में भेद होता है। एक संरचना से एक ही छाया निकल सकती है। पीछे वाजपेयी के सहारे हिंदी में कर्तादि की विभक्तियाँ (मतलब परसर्ग) विवेचित हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ख़ास-ख़ास विभक्तियों का ख़ास-ख़ास कारकों से संबंध होता है। विभक्ति (मतलब परसर्ग) बदल रही हो तो स्पष्टत: कारकत्व भी बदल रहा होता है। जैसे— वह कुएँ में नहाता है। (अधिकरण) वह कुएँ से नहाता है। (करण) इनमें कारकत्व की विवक्षा बदली ही है। कुछ नहीं तो अर्थ-छाया का भेद तो हुआ है। जैसे— वह गेंद खेलती है। (कर्ता का ईप्सिततम = कर्म) वह गेंद से खेलती है। (क्रिया का साधकतम = करण)। इस विवेचन का सार यह है कि 'कारकत्व' का निश्चय वाक्य-संरचना के भीतर ही हो सकता है, न कि लोक में जाकर।

समग्रत: कहा जा सकता है कि अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद, किशोरीदास वाजपेयी ने कारक व विभक्ति से सम्बद्ध अपने विमर्श द्वारा इस क्षेत्र में हिंदी-व्याकरण की डगमगा रही सैद्धांतिकी को पर्याप्त दृढ़ता प्रदान की है। उन्होंने अर्थपरक अवधारणा के रूप में 'कारक' की व्याख्या और 'ने', 'को' आदि विभिन्न प्रातिपदिक-विभक्तियों (मतलब परसर्गों, जिनमें उनके द्वारा आविष्कृत 'के','-रे' जैसी कथित 'संबंध-विभक्तियाँ' भी हैं) के विविध कारकीय और कारकेतर अर्थों में प्रयोग के क्षेत्रों की सूक्ष्म मीमांसा करके न केवल हिंदी-व्याकरण के एक बड़े अभाव की पूर्त्ति की, बल्कि

---

[46] वही : 456.

12_pathak_Layout 1 6/3/2015 3:53 PM Page 212

नवीन विमर्श की अनेक दिशाओं का उन्मीलन भी किया। 'विभक्ति' व 'कारक' के अभेदीकरण के बन चुके विवेचन-मार्ग को उन्होंने सदा के लिए बंद कर दिया तथा दोनों की स्पष्ट भिन्नता प्रतिपादित की और यह साफ़-साफ़ कह दिया कि कारक-विभक्ति (मतलब परसर्ग) भर को देख कर 'कारक' का निर्णय नहीं हो सकता। उन्होंने सोदाहरण यह समझाया है कि एक ही 'विभक्ति (मतलब 'परसर्ग) का प्रयोग अनेक कारकों या कारकेतर अर्थों में कैसे होता है। इन्हीं सब कारणों से उनका 'कारक-विभक्ति-विमर्श' हिंदी-व्याकरण के इतिहास में 'मील का पत्थर' बना।

संदर्भ :

अनंत चौधरी (1972), *हिंदी व्याकरण का इतिहास,* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना.
अम्बिका प्रसाद वाजपेयी (1919), *हिंदी कौमुदी,* प्रकाशक : प्रतापनारायण वाजपेयी, कलकत्ता.
किशोरीदास वाजपेयी (1976), *हिंदी शब्दानुशासन,* द्वितीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.
---------- (संवत् 2038), *सरल शब्दानुशासन,* द्वितीय संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.
---------- (1943), *ब्रजभाषा का व्याकरण,* हिमालय एजेंसी, कनखल.
---------- (1949), *राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण,* जनवाणी प्रकाशन, कलकत्ता.
जाल्मन दीमशित्स (1983), *हिंदी-व्याकरण,* रादुगा प्रकाशन, मास्को.
जे.सी. नेसफ़ील्ड (1908), *मैनुअल ऑफ़ इंग्लिश ग्रैमर ऐंड कम्पोज़ीशन,* मैक्मिलन, लंदन.
निगमानंद परमहंस (1967), *राष्ट्रभाषा का शुद्ध रूप,* शब्द लोक प्रकाशन, वाराणसी.
महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा (1954), 'हिंदी व्याकरण-सार', बदरीनाथ वर्मा (सम्पा.), *श्रीरामावतार शर्मा निबंधावली,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना.
रामदेव त्रिपाठी (1986), *हिंदी भाषानुशासन,* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना.
रामनरेश मिश्र 'हंस'(1975), *करण-कारक-विवेक,* परमानंद साहित्य सदन, कंचनामा, मखदुमपुर, गया.
हजारी प्रसाद द्विवेदी (1998), 'हिंदी व्याकरण की समस्या', मुकुंद द्विवेदी (सम्पा.), *भाषा, साहित्य और देश,* भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.